* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

शिव-परिवार

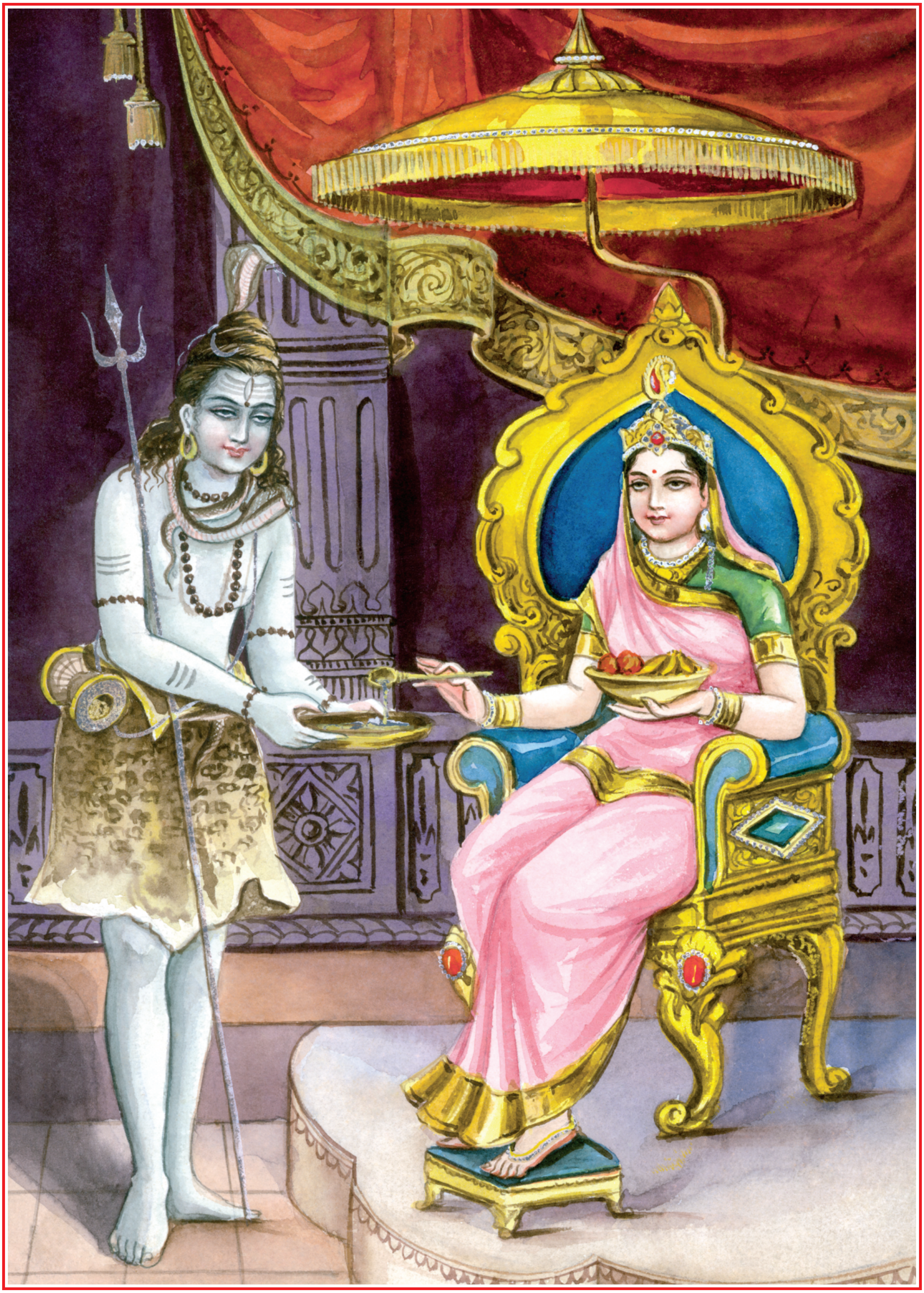

माता अन्नपूर्णा और भगवान् शिव

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥

[रामचरितमानस, बालकाण्ड]

वर्ष ९७ | गोरखपुर, सौर आश्विन, वि० सं० २०८०, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, सितम्बर २०२३ ई० | संख्या ९

पूर्ण संख्या ११६२

माता अन्नपूर्णासे प्रार्थना

मातर्भवानि तव पादरजो भवानि
मातर्भवानि तव दासतरो भवानि।
मातर्भवानि न भवानि यथा भवेऽस्मिन्
त्वद्भाग् भवान्यनुदिनं न पुनर्भवानि॥

[काशीखण्ड ६१/१३७]

‘हे माता भवानी अन्नपूर्णे! मैं आपके चरणोंकी धूलि हो जाऊँ। हे माता भवानी! मैं आपका परम सेवक बन जाऊँ। हे माता भवानी! जिससे कि मुझे इस संसारमें आना न पड़े। हे भवानी! मैं प्रतिदिन आपका अनन्य भावसे सेवा करनेवाला हो जाऊँ और फिर संसारमें उत्पन्न न होऊँ।’

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर आश्विन, वि० सं० २०८०, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, सितम्बर २०२३ ई०, वर्ष ९७—अंक ९

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- माता अन्नपूर्णासे प्रार्थना	३
२- सम्पादकीय	५
३- कल्याण	६
४- शिव-परिवार **[आवरणचित्र-परिचय]**	७
५- महापुरुषोंका अलौकिक प्रभाव (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	८
६- संसार भावमय है (गोलोकवासी परम भागवत सन्त श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज)	९
७- एक लालसा (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१०
८- नरसीकी हुण्डी (श्रीहरिकृष्णजी नीखरा)	११
९- भगवद्भक्तिका स्वरूप एवं माहात्म्य (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	१२
१०- बुद्धिमान् बनजारा **[साधकोंके प्रति]** (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१४
११- शिवलिंगका तात्पर्य और रहस्य (डॉ० श्रीरामलखन सिंहजी)	१५
१२- श्रीमद्भगवद्गीताके माध्यमसे भगवद्दर्शन (डॉ० श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त)	१७
१३- गीता-सन्देश **[कविता]** (राष्ट्रकवि श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त)	१८
१४- कुसंग सर्वथा परित्याज्य (श्रीभगवानलालजी शर्मा 'प्रेमी')	१९
१५- योगिराज कल्याण स्वामीकी अद्भुत गुरुभक्ति (सौ० मधुवन्ती मकरन्दजी मराठे)	२१
१६- परमात्मप्राप्तिमें बाधक है—अहंकार (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)	२२
१७- मृत्युके पश्चात् (श्रीप्रशान्तकुमारजी रस्तोगी)	२४
१८- 'मैं' नहीं 'तू' (डॉ० श्रीफूलचन्द प्रसादजी गुप्त)	२६
१९- रामनाम सुखधाम **[कविता]** (आचार्य श्रीभानुदत्तजी त्रिपाठी 'मधुरेश')	२७
२०- पुरुषार्थ और कृपा (डॉ० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')	२८
२१- गुरु अर्जुनदेवकी विनम्रता (श्रीबलविन्दरजी बालम)	२९
२२- गायत्री-जपकी महिमा (श्रीरामकिशोरजी सिंह 'विरागी')	३०
२३- सुन्दरकाण्डमें सामाजिक मर्यादाके सूत्र (श्रीमती आशाजी मेहरोत्रा)	३२
२४- रामेश्वरम्‌का विभीषण-मन्दिर **[तीर्थ-दर्शन]** (श्रीभानदेवजी)	३६
२५- मोटापा (वजन) कैसे घटायें? **[आरोग्य-चर्चा]** (योगाचार्य डॉ० श्रीओमप्रकाशजी 'आनन्द')	३९
२६- पौराणिक ग्रन्थोंमें गौका महत्त्व **[गो-चिन्तन]** (डॉ० श्रीश्याम मनोहरजी व्यास)	४०
२७- ब्रह्मचारी श्रीमहेन्द्र महाराज **[सन्त-चरित]** (डॉ० श्रीगोपालप्रसादजी पाठक, एम०ए०, पी-एच०डी०)	४१
२८- सुभाषित-त्रिवेणी	४३
२९- व्रतोत्सव-पर्व **[आश्विनमासके व्रत-पर्व]**	४४
३०- कृपानुभूति	४५
३१- पढ़ो, समझो और करो	४६
३२- मनन करने योग्य	४९

चित्र-सूची

१- शिव-परिवार	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- माता अन्नपूर्णा और भगवान् शिव	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- वृक्षकी शाखा काटते कल्याण स्वामी	(इकरंगा)	२१
४- भगवती गायत्री देवी	(,,)	३०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / एकवर्षीय शुल्क ₹300 मासिक अंक साधारण डाकसे
पञ्चवर्षीय शुल्क ₹2500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / पञ्चवर्षीय शुल्क ₹1500 मासिक अंक साधारण डाकसे
विदेशमें Air Mail शुल्क वार्षिक US$ 50 (₹4,000) / Cheque Collection Charges 6 $ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका** आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**, सहसम्पादक—**कृष्णकुमार खेमका**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242/244** | **WhatsApp : 9648916010, 8188054404**

सदस्यता-शुल्क —**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता हेतु gitapress.org के **Kalyan** पर click करके **Subscribe** option पर click करें।
'कल्याण' के मासिक अङ्क www.gitapress.org के **E-Books Option** पर नि:शुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

॥ श्रीहरिः ॥

हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ और मन निरन्तर व्यस्त रहते हैं, कभी सकारण और प्रायः अकारण। यदि हम इनकी गतिविधिपर ध्यान दें तो यह बात स्पष्ट हो जायगी। किंतु हमें इनसे अलग रहकर इनपर ध्यान देनेकी बात प्रायः समझ ही नहीं आती।

कभी भोजन करते समय जीभपर उठते स्वादपर ध्यान देकर देखें। प्रायः हम स्वादको नहीं देखकर अनेक विचारोंकी लहरोंमें उलझ जाते हैं। जैसे अमुक समय यह सब्जी बहुत अच्छी बनी थी, आज वैसी नहीं है, इत्यादि। यह अनुपस्थित रहकर जीवन बिताने-जैसी बात है।

यदि हम जाग्रत् रहकर होशपूर्वक जीनेका अभ्यास करें तो पायेंगे कि हमारा अधिकांश समय अपेक्षाओंमें जाता है। जो 'है' उसकी जगह जो 'होना चाहिये' उसमें हम उलझे रहते हैं। कुछ समय 'जो है' उसमें जीनेका आनन्द लें, तो भगवत्कृपाकी धाराका स्पर्श हो। अपेक्षाओंका छाता थोड़ी देरको बन्द करके देखें, आनन्द आयेगा। अपेक्षारहित जीवन निष्काम-कर्मका बीज है।

—सम्पादक

हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कल्याण

याद रखो—जबतक तुम अपने मनकी बात पूरी होनेमें सुख मानते हो और पूरी न होनेमें दु:ख मानते हो, तबतक तुम्हें वस्तुत: अपने असली सुख-दु:खका पता ही नहीं है। सुख तो वह है जो सदा रहे, जिसका आधार कोई बाहरी वस्तु न हो, जो अपनी चीज हो और जिसमें एकरसता हो तथा जो आत्मस्वरूप हो। यही यथार्थ सुख है। इस सुखके अभावका जब ज्ञान हो जाता है, तब सुखके नामपर होनेवाले दु:खोंसे मनुष्य अकुला उठता है, यही असली दु:ख है। जब मनुष्य इस दु:खसे दुखी हो जाता है, तब उसकी किसी भी भोगसुखमें प्रवृत्ति नहीं होती और भोगवासनाका अन्त हो जाता है। संसारके प्राणिपदार्थोंसे अरुचि हो जाती है। यह दु:ख उसको परमसुखमय आत्माका या भगवान्‌का साक्षात्कार करा देता है। मनुष्य जो भगवान्‌से विमुख हो रहा है, इसका एक प्रधान कारण भोग-सुखकी महत्ता, भोगसुखमें रुचि, प्रवृत्ति और भोगवासना ही है। भोगवासनाका नाश होते ही संसारसे सहज ही विमुखता और भगवान्‌की सम्मुखता हो जाती है तथा भगवान् मिल जाते हैं।

याद रखो—जिसको तुम जीवन कहते हो, वह जीवन नहीं है, वह तो मृत्युका प्रवाह है। शिशु-अवस्था मर गयी, कौमार आ गयी; कौमार-अवस्था मरी, जवानी आयी; जवानी मरी, बुढ़ापा आया। कोई भी अवस्था स्थायी नहीं है। प्रतिक्षण परिवर्तन हो रहा है, प्रतिक्षण विनाश हो रहा है। गंगाकी धारा बहती दिखायी देती है, पर प्रतिक्षण सतत जल बहा जा रहा है; जो बह गया, वह नहीं है, नया आ गया। यह परिवर्तन ही मृत्यु है और जो मृत्यु है, उसे जीवन कहना या मानना भ्रम है। असली जीवन तो वह है, जिसमें मरनेका डर नहीं है, जिसमें कभी परिवर्तन नहीं होता, जो बाल्य, युवा, वृद्ध सभी अवस्थाओं तथा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय—सभी स्थितियोंमें एक-सा रहता है। शरीर तो हाड़-मांस, मज्जा-मेद तथा मल-मूत्रका थैला है, नष्ट होनेवाला है, प्रतिक्षण नष्ट हो ही रहा है। इसमें जो मैंपन आ गया, इसीने असली अमर जीवनसे विमुख करके तुमको भ्रममें डाल दिया है। भ्रमका नाश होते ही आत्माका प्रकाश हो जाता है तथा नित्य और अमर जीवनकी, जो तुम्हारा स्वरूप है, प्राप्ति हो जाती है।

याद रखो—इन्द्रियोंके साथ अनुकूल भोगोंका सम्बन्ध होनेपर जिस सुखभोगकी प्रतीति होती है, वह वास्तविक सुख नहीं है। यह सुख यथार्थत: दु:खोंकी उत्पत्ति करानेवाला ही है—भयानक दु:खोंका पूर्वरूप है; जैसे विषयुक्त मिठाई देखने-खानेमें सुन्दर और मधुर लगनेपर भी अन्तमें मार देनेवाली होती है, वैसे ही ये भोग-सुख पहले अमृत-सरीखे प्रतीत होनेपर भी अन्तमें आत्माका पतन करने और उसे दु:ख-सागरमें डालनेवाले होते हैं। इसलिये इन भोग-सुखोंको दु:खरूप मानो और इनकी चाहको मिटाकर भगवान्‌की चाह करो। यह निश्चय मानो—इनसे कभी दु:खोंका नाश नहीं होगा। इनकी प्राप्ति अभावको मिटायेगी नहीं, वरं बढ़ायेगी और इनके संयोगका भी अन्त हो जायगा। ये सभी अनित्य और दु:खमय हैं। इनसे सम्बन्ध तोड़कर इनका सदुपयोग करना सीखो।

याद रखो—भोगोंके और इन्द्रियोंके वशमें न होकर राग-द्वेषको निकालकर जब तुम मन-इन्द्रिय और शरीरको अपने नियन्त्रणमें कर लोगे और पूर्ण नियन्त्रित इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंका यथायोग्य भगवत्सेवामें सदुपयोग करोगे, तब तुमको भगवत्प्रसादका स्वाद आयेगा, तुम्हारा चित्त प्रसन्न या निर्मल हो जायगा, तब तुम्हारे सारे दु:खोंका अन्त हो जायगा और तुम्हारी प्रज्ञा सहज ही परमात्मामें प्रतिष्ठित हो जायगी। तुम्हें असली जीवनका साक्षात्कार होगा और तुम बन्धनसे सदाके लिये मुक्त हो जाओगे। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

शिव-परिवार

शिव-परिवार एक आध्यात्मिक रहस्य है। साधारणतया लोग शिवको 'योगीश्वर' कहते हैं, परंतु वास्तवमें वे गृहस्थोंके ईश्वर हैं, विवाहित दम्पतीके उपास्य देवता हैं। विवाहित स्त्रियाँ जो उन्हें पूजती हैं, इसमें अवश्य ही कुछ तत्त्व है। बात यह है कि शिवजी स्त्री और पुरुषकी पूर्ण एकताकी अभिव्यक्ति हैं। इसी कारण वे उन्हें पूजती हैं। हमें किसी भी वस्तुको, उसके गुण-दोषका विचार करते हुए उसके यथार्थ स्वरूपमें देखना चाहिये और उसी रूपमें उसके महत्त्वको समझना चाहिये। हमें परस्परविरोधी द्वन्द्वोंकी विषमताको दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये; क्योंकि यही तो वास्तविक योग है। कहा भी है—'**समत्वं योग उच्यते**' अर्थात् समताका नाम ही 'योग' है। स्थूल जगत्की सारी विषमताओंसे घिरे रहनेपर भी अपनी चित्तवृत्तिको शान्त एवं स्थिर बनाये रखना ही योगका स्वरूप है। भगवान् शिव अपने पारिवारिक सम्बन्धोंसे हमें इसी योगकी शिक्षा देते हैं। देखिये न, बाह्यदृष्टिसे आपका परिवार विषमताका जीता-जागता नमूना है। सबके अपने-अपने रास्ते हैं। किसीका किसीके साथ मेल नहीं। आप बैलपर चढ़ते हैं, तो भगवती भवानी सिंहवाहिनी हैं, दोनोंका कैसा जोड़ मिला है? आप भुजंगभूषण हैं, तो श्रीस्वामिकार्तिकेयको मोरकी सवारी पसन्द है और उधर लम्बोदर गणेशजी महाराजको चूहेपर चढ़नेमें ही सुभीता सूझता है। आपने गंगाजीको सिरपर चढ़ा रखा है, जिससे पार्वतीजीको दिन-रात सौतियाडाह हुआ करता होगा। इस प्रकार आपकी गृहस्थी क्या है, मानो झंझटकी पिटारी है, मानसिक शान्ति और पारिवारिक सुखके लिये कैसा सुन्दर साज जुटा है? परंतु भगवान् शिव तो प्रेम और शान्तिके अथाह समुद्र एवं सच्चे योगी ठहरे। उनके मंगलमय शासनमें सभी प्राणी अपना स्वाभाविक वैर-भाव भुलाकर आपसमें तथा संसारके अन्य सब जीवोंके साथ पूर्ण शान्तिमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं। स्वयं उनका तो किसीके साथ द्वेष है नहीं, वे तो आनन्दरूप ही हैं, जो कोई उनके सम्पर्कमें आता है, वह भी आनन्दरूप बन जाता है। उनके चारों ओर आनन्दके ही परमाणु फैले रहते हैं। यही महेशका सबसे महान् गुण है और इसीलिये आप 'शिव' (कल्याणरूप) एवं 'शंकर' (आनन्ददाता) कहलाते हैं। सारे विरोधोंका सामंजस्यकर उस शान्तिकी उपलब्धि करनी चाहिये, जो बुद्धिसे परेकी वस्तु है, यही अमूल्य शिक्षा हमें शिवजीके चरित्रसे मिलती है।

हम क्षुद्र जीवोंको गृहस्थाश्रममें रहकर ही भगवान् शिवकी इस शिक्षाको अमलमें लाना चाहिये। हममेंसे प्रत्येकको चाहिये कि वह पार्वती-जैसी योग्य पत्नीका वरणकर स्वामिकार्तिकेय और गणेशजी-जैसी विरुद्ध स्वभाववाली संततिका प्रेमपूर्वक लालन-पालन करे। अपनी धर्मपत्नीके साथ पूर्ण एकात्मताका अनुभवकर, उसकी आत्मामें आत्मा मिलाकर ही मनुष्य आनन्दरूप शिवकी उपलब्धि कर सकता है। वास्तविक योगका स्वरूप यही है, जिसकी सिद्धि संसारमें रहकर ही हो सकती है। यह बिलकुल सीधी-सी बात है कि किसी जंगलमें अथवा हिमालयकी चोटीपर रहकर कोई भी समताका व्यवहार कर सकता है, परंतु अपने दैनिक जीवनमें, नाना प्रकारके झंझटोंका सामना करते हुए भी जो अक्षुब्ध रह सकता है, वही शिवका सच्चा भक्त है।

यही सच्ची समता, जो सत् और चित्के पूर्ण संयोगसे उत्पन्न होती है, अर्धनारीश्वरके विग्रहमें अभिव्यक्त हुई है। इसमें पुरुष प्रकृतिके संयोगद्वारा माया (द्वन्द्वमय जगत्)-के आवरणको भेदकर आनन्दरूप पूर्णताको प्राप्त कर लेता है। तब सारे विरोध मिट जाते हैं और मनुष्य उस स्थितिमें पहुँच जाता है, जहाँ न पुरुष है, न प्रकृति, न स्त्री है, न पुरुष—केवल एक अद्वितीय वस्तु—'**एकमेवाद्वितीयम्**' ही शेष रह जाता है। वही अनन्त आनन्दकी मूर्ति अर्ध-नारीश्वर शिव हैं। उनका परिवार इस द्वन्द्वात्मक जगत्में ऐक्यका प्रतीक है, जो प्रेम और शान्तिका सन्देश देता है।

महापुरुषोंका अलौकिक प्रभाव

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

ईश्वर और महापुरुषोंका एक तो लौकिक प्रभाव होता है और दूसरा अलौकिक। जैसे भगवान् श्रीकृष्णजीने अनेकों राक्षसोंको मार डाला और गोवर्धनपर्वतको धारण कर लिया; इसी प्रकार जैसे श्रीरामचन्द्रजीने अनेकों राक्षसोंको मार डाला और समुद्रपर पुल बाँध दिया। यह उनका लौकिक प्रभाव है। श्रीकृष्णजीने ग्वाल-बाल और बछड़ोंके रूपमें परिणत होकर उनकी माताओं और गायोंका उद्धार कर दिया एवं श्रीरामचन्द्रजीने वनवाससे लौटकर अयोध्यामें प्रवेश करते समय एक साथ अनेक रूप धारण करके सबसे मिलकर उनका उद्धार किया—यह उनका अलौकिक प्रभाव है।

इसी प्रकार महात्माओंमें भी ये दोनों होते हैं। जैसे मूक चाण्डाल आदिका मकान आकाशमें ही झूला करता था और वे गुप्त घटनाको भी जान लेते थे—यह उनका लौकिक प्रभाव है। उनके परलोक सिधारनेके समय उनके माता-पिता और उनके घरमें रहनेवाले जीव-जन्तु भी दिव्य रूप धारण करके उनके साथ परम धामको चले गये—यह उनका अलौकिक प्रभाव है। इसी तरह श्रीवसिष्ठजीका विश्वामित्रजीको युद्धमें परास्त कर देना लौकिक प्रभाव है और उनको ब्रह्मर्षि बना देना अलौकिक प्रभाव है। श्रीभरद्वाजजीमें जो सिद्धियाँ थीं, वह उनका लौकिक प्रभाव था और उनमें जो कल्याण करनेकी शक्ति थी, वह उनका अलौकिक प्रभाव था।

भाव यह कि आत्माका उद्धार करनेवाला महात्माओंका जो प्रभाव है, वह तो अलौकिक है और जो संसारमें सिद्धि, चमत्कार आदिका प्रकट होना है, यह लौकिक प्रभाव है।

इन लौकिक और अलौकिक दोनों ही प्रकारके प्रभावोंका प्राकट्य कहीं तो श्रद्धा और प्रेमसे होता है और कहीं बिना श्रद्धाके उनकी कृपासे ही हो जाता है। जैसे कौरवोंकी सभामें और उत्तंक ऋषिको भगवान्ने अपना विराट् स्वरूप दिखलाया। उसमें श्रद्धाकी प्रधानता नहीं थी, भगवान्ने स्वयं कृपा करके अपनी इच्छासे दिखाया। किंतु ध्रुव, प्रह्लाद और अर्जुन आदि भक्तोंको भगवान्ने जो अपना स्वरूप दिखाया, उसमें उनके प्रेम और श्रद्धाकी प्रधानता थी।

इसी प्रकार सन्त-महात्माओंके प्रभावका प्राकट्य भी कहीं तो श्रद्धापूर्वक होता है और कहीं बिना श्रद्धाके स्वाभाविक हो जाता है। जैसे शास्त्रोंमें ध्रुव और प्रह्लाद आदिके माता-पिताके कल्याणकी बात आती है। इसमें श्रद्धाका सम्बन्ध नहीं है, यह उन महात्माओंके प्रभावका स्वाभाविक परिणाम है।

इसके अतिरिक्त, श्रीनारदपुराणमें एक कथा आती है। राजा बाहुके मर जानेपर उनकी पत्नीने उसी वनमें महात्मा और्व मुनिके देखते-देखते ही अपने पतिके शवका दाह-संस्कार किया। वहाँ कहा है कि और्व मुनिके उपस्थित रहनेसे राजा बाहु तेजसे प्रकाशित होते हुए चितासे निकले और श्रेष्ठ विमानपर बैठकर तथा और्व मुनिको प्रणाम करके परम धामको चले गये। वहाँ महापुरुषोंकी महिमाका वर्णन करते हुए मुनीश्वर श्रीसनकजीने कहा है—

महापातकयुक्ता वा युक्ता वा चोपपातकैः।
परं पदं प्रयान्त्येव महद्भिरवलोकिताः॥
कलेवरं वा तद्भस्म तद्धूमं वापि सत्तम।
यदि पश्यति पुण्यात्मा स प्रयाति परां गतिम्॥

(नारद०पूर्व०प्रथम० ७।७४-७५)

'सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ नारद! जिनपर अन्तकालमें महापुरुषोंकी दृष्टि पड़ जाती है, वे महापातक या उपपातकसे युक्त होनेपर भी अवश्य परम पदको प्राप्त हो जाते हैं। महात्मा पुरुष यदि अन्तकालमें किसीके मृत शरीरको या शरीरके भस्मको अथवा उसके धुएँको भी देख लें तो वह परम पदको प्राप्त हो जाता है।'

यह है महापुरुषोंका स्वाभाविक अलौकिक प्रभाव!

संसार भावमय है

(गोलोकवासी परम भागवत सन्त श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज)

केदारनाथकी यात्रा जिन वैष्णवोंने की है, उनको खबर है—केदारनाथके मार्गमें गुप्तकाशी आती है। गुप्तकाशीसे एक मार्ग उषीमठकी तरफ जाता है। ठंडके दिनोंमें भगवान् केदारनाथके स्वरूपको उषीमठमें रखते हैं। मन्दिरमें बहुत बर्फ पड़ती है। वहाँ कोई रह सकता नहीं है। भगवान् बदरीनारायणके स्वरूपको जोशीमठमें रखते हैं। बाणासुरकी कन्या उषादेवीका राजमहल वहाँ था। इसलिये उसे लोग उषीमठ कहते हैं। उषीमठके पास तीन-चार पहाड़ मिले हुए हैं। शान्त वातावरण हो तो बहुत आनन्द आता है। वहाँ मानव खड़ा हो करके जो शब्द बोलता है, वही शब्द प्रतिध्वनिके रूपमें उसके कानमें आता है। तीन-चार पहाड़ मिले हुए हैं, इसलिये प्रतिध्वनिकी भी प्रतिध्वनि निकलती है। आप जो शब्द बोलो, उसकी प्रतिध्वनि आयेगी और प्रतिध्वनिकी प्रतिध्वनि दूसरे पहाड़मेंसे निकलेगी। वहाँ खड़ा हो करके कोई बोले—'गंगे हर'; तो प्रतिध्वनि आयेगी—'गंगे हर··· गंगे हर··· गंगे हर···।' प्रतिध्वनिसे प्रतिध्वनि दूसरे पहाड़से निकलेगी। एक बार आप 'गंगे हर' बोलो तो दो बार-तीन बार 'गंगे हर·· गंगे हर'की प्रतिध्वनि निकलती है। कदाचित्, वहाँ कोई जा करके बोले—'तेरा सत्यानाश हो जाय' तो प्रतिध्वनि आयेगी—तेरा सत्यानाश हो जाय···।' जैसी ध्वनि करो, वैसी प्रतिध्वनि होगी।

जगत्के लिये आप जैसा भाव रखोगे, वैसा भाव जगत्के जीव आपके लिये रखेंगे। संसार भावमय है। किसीके लिये खराब विचार मत करो। किसीके लिये खराब शब्द मत बोलो। सद्भावसे ही सत्कर्म सफल होता है। सनातनधर्ममें क्रियाको बहुत महत्त्व नहीं दिया है; क्रिया करनेवालेके हृदयमें भाव कैसा है, किस भावसे क्रिया करता है—इसका महत्त्व है।

एक चोर था। वह चोरी करनेके लिये निकला। मार्गमें सत्यनारायणका एक मन्दिर आया। वह मन्दिरमें गया और सत्यनारायण-भगवान्को वन्दन करके उसने मनौती रखी—'हे सत्यनारायणभगवन्! मैं चोरी करनेके लिये जाता हूँ, कृपा करो। आज मुझे पचीस-तीस हजार रुपया मिलना चाहिये। मुझे पचीस-तीस हजार रुपया मिल जाय तो घरमें आ करके सवा मनका हलुवा बनाऊँगा, अनेक ब्राह्मणोंको बुलाऊँगा, बड़ी सत्यनारायणकी पूजा करूँगा।' उसने भगवान्की ऐसी मनौती रखी। उस दिनका योग कुछ ऐसा था कि उसको उस दिन चोरीमें तीस हजार रुपये मिल गये। फिर तो उसने अनेक साधुओंको बुलाया, अनेक ब्राह्मणोंको बुलाया, सवा मनका हलुवा बनाया, सत्यनारायणकी बड़ी भारी पूजा की।

चोर सत्यनारायणकी पूजा करता है—वह धर्म है या अधर्म है—सत्यनारायणकी पूजा तो धर्म है; किन्तु चोर जो पूजा करता है—उसका सत्यमें स्नेह नहीं है, नारायणमें प्रेम नहीं है। चोर इस प्रकार पूजा करे तो भगवान् प्रसन्न होते हैं? भगवान्को हलुआ खानेको नहीं मिलता है—चोर यदि भगवान्को भोग लगाये तो क्या भगवान् उसका स्वीकार करते हैं? देव-पूजाका अधिकार उसीको है, जो देवके जैसा है—**देवो भूत्वा यजेद् देवम्!** जो देवके जैसा है, उसीके हाथकी पूजा देवलोग लेते हैं। पूजाके आरम्भमें अंगन्यास-करन्यास करना पड़ता है। शरीरके एक-एक अंगमें भगवान्की स्थापना है। जो भगवान्के जैसा है, उसीके हाथकी पूजा भगवान् लेते हैं। चोर जो सत्यनारायणकी पूजा करता है—उसका सत्यमें स्नेह नहीं है, उसका प्रभुमें प्रेम नहीं है। सत्यमें स्नेह हो तो कभी चोरी करनेके लिये जाय ही नहीं। चोर सत्यनारायणकी पूजा करता है, वह परमात्माको प्रसन्न करनेके लिये नहीं, मेरी चोरी जाहिर न हो—मुझे सजा न हो—इसलिये वह पूजा करता है। उसकी चोरी जाहिर न हो तो महीना-दो महीनाके बाद, वह फिरसे सत्यनारायणकी मनौती रखेगा, फिरसे चोरी करनेके लिये जायगा। सत्यनारायणकी पूजा धर्म है, पर कुभावसे धर्म करे तो वह धर्म भी अधर्म माना जायगा। **धर्ममें भाव मुख्य है, क्रिया गौण है।**

एक लालसा

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

जीवनका परम ध्येय स्थिर हो जानेपर जब उसके अतिरिक्त अन्य सभी लौकिक-पारलौकिक पदार्थोंके प्रति वैराग्य हो जाता है, तब साधकके हृदयमें कुछ दैवी भावोंका विकास होता है। उसका अन्त:करण शुद्ध सात्त्विक बनता जाता है। इन्द्रियाँ वशमें हो जाती हैं, मन विषयोंसे हटकर परमात्मामें एकाग्र होता है, सुख-दु:ख, शीतोष्णका सहन सहजमें ही हो जाता है, संसारके कार्योंसे उपरामता होने लगती है, परमात्मा और उसकी प्राप्तिके साधनोंमें तथा सन्त-शास्त्रोंकी वाणीमें परम श्रद्धा हो जाती है, परमात्माको छोड़कर दूसरे किसी पदार्थसे मेरी तृप्ति होगी या मुझे परम सुख मिलेगा, यह शंका सर्वथा मिटकर चित्तका समाधान हो जाता है। फिर उसे एक परमात्माके सिवा अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता, उसकी सारी क्रियाएँ केवल परमात्माकी प्राप्तिके लिये होती हैं। वह सब कुछ छोड़कर एक परमात्माको ही चाहता है। इसीका नाम मुमुक्षा या शुभेच्छा है। मुमुक्षा तो इससे पहले भी जाग्रत् हो सकती है, परंतु वह प्राय: अत्यन्त तीव्र नहीं होती। ध्येयका निश्चय, वैराग्य, सात्त्विक षट् सम्पत्ति आदिकी प्राप्तिके बाद जो मुमुक्षुत्व होता है, वही अत्यन्त तीव्र हुआ करता है। भगवान् श्रीशंकराचार्यने मुमुक्षुत्वके तीव्र, मध्यम, मन्द और अतिमन्द—ये चार भेद बतलाये हैं। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक भेदसे त्रिविध* होनेपर भी प्रकारभेदसे अनेकरूप दु:खोंके द्वारा सर्वदा पीड़ित और व्याकुल होकर जिस अवस्थामें साधक विवेकपूर्वक परिग्रहमात्रको ही अनर्थकारी समझकर त्याग देता है, उसको तीव्र मुमुक्षा कहते हैं। त्रिविध तापका अनुभव करने और सत्-परमार्थ वस्तुको विवेकसे जाननेके बाद, मोक्षके लिये भोगोंका त्याग करनेकी इच्छा होनेपर भी संसारमें रहना उचित है या त्याग देना, इस प्रकारके संशयमें झूलनेको मध्यम मुमुक्षा कहते हैं। मोक्षके लिये इच्छा होनेपर भी यह समझना कि अभी बहुत समय है, इतनी जल्दी क्या पड़ी है, संसारके कामोंको कर लें, भोग भोग लें, आगे चलकर मुक्तिके लिये भी उपाय कर लेंगे। इस प्रकारकी बुद्धिको मन्द मुमुक्षा कहते हैं और जैसे किसी राह चलते मनुष्यको अकस्मात् रास्तेमें बहुमूल्य मणि पड़ी दिखायी दी और उसने उसको उठा लिया, वैसे ही संसारके सुख-भोग भोगते-भोगते ही भाग्यवश कभी मोक्ष मिल जायगा तो मणि पानेवाले पथिककी भाँति मैं भी धन्य हो जाऊँगा। इस प्रकारकी मूढ़-मतिवालोंकी बुद्धिको अतिमन्द मुमुक्षा कहते हैं। बहुजन्मव्यापी तपस्या और श्रीभगवान्की उपासनाके प्रभावसे हृदयके सारे पाप नष्ट होनेसे भगवान्की प्राप्तिके लिये तीव्र इच्छा उत्पन्न होती है। तीव्र इच्छा उत्पन्न होनेपर मनुष्यको इसी जीवनमें भगवान्की प्राप्ति हो जाती है—'**यस्तु तीव्रमुमुक्षुः स्यात् स जीवन्नेव मुच्यते।**' इस तीव्र शुभेच्छाके उदय होनेपर उसे दूसरी कोई भी बात नहीं सुहाती, जिस उपायसे उसे अपने प्यारेका मिलन सम्भव दीखता है, वह लोक-परलोक किसीकी कुछ भी परवा न कर उसी उपायमें लग जाता है। प्रिय-मिलनकी उत्कण्ठा उसे उन्मत्त बना देती है! प्रियकी प्राप्तिके लिये वह तन-मन-धन-धर्म-कर्म—सभीका उत्सर्ग करनेको प्रस्तुत रहता है। प्रियतमकी तुलनामें उसकी दृष्टिसे सभी कुछ तुच्छ हो जाता है, वह अपने-आपको प्रियमिलनेच्छापर न्योछावर कर डालता है। ऐसे भक्तोंका वर्णन करते हुए सत्पुरुष कहते हैं—

प्रियतमसे मिलनेको जिसके प्राण कर रहे हाहाकार।
गिनता नहीं मार्गकी, कुछ भी, दूरीको, वह किसी प्रकार॥
नहीं ताकता, किञ्चित् भी, शत-शत बाधा-विघ्नोंकी ओर।
दौड़ छूटता जहाँ बजाते मधुर-वंशरी नन्दकिशोर॥

प्रियतमके लिये प्राणोंको तो हथेलीपर लिये घूमते हैं ऐसे प्रेमी साधक! उनके प्राणोंकी सम्पूर्ण व्याकुलता, अनादिकालसे लेकर अबतककी समस्त इच्छाएँ उस एक ही प्रियतमको अपना लक्ष्य बना लेती हैं। प्रियतमको शीघ्र पानेके लिये उसके प्राण उड़ने लगते हैं। एक सज्जनने कहा है कि 'जैसे बाँधके टूट जानेपर जलप्लावनका प्रवाह बड़े वेगसे बहकर सारे प्रान्तके गाँवोंको बहा ले

*अनेक प्रकारके मानसिक और शारीरिक रोग आदिसे होनेवाले दु:खोंको आध्यात्मिक; अनावृष्टि, अतिवृष्टि, वज्रपात, भूकम्प, दैव-दुर्घटना आदिसे होनेवाले दु:खोंको आधिदैविक और दूसरे मनुष्यों या भूतप्राणियोंसे प्राप्त होनेवाले दु:खोंको आधिभौतिक कहते हैं।

जाता है, वैसे ही विषय-तृष्णाका बाँध टूट जानेपर प्राणोंमें भगवत्प्रेमके जिस प्रबल उन्मत्त वेगका संचार होता है, वह सारे बन्धनोंको जोरसे तत्काल ही तोड़ डालता है। प्रणयीके अभिसारमें दौड़नेवाली प्रणयिनीकी तरह उसे रोकनेमें किसी भी सांसारिक प्रलोभनकी प्रबल शक्ति समर्थ नहीं होती, उस समय वह होता है अनन्तका यात्री—अनन्त परमानन्द-सिन्धु-संगमका पूर्ण प्रयासी! घर-परिवार—सबका मोह छोड़कर, सब ओरसे मन मोड़कर वह कहता है—

बन बन फिरना बेहतर हमको रतन-भवन नहिं भावै है।
लता तले पड़ रहनेमें सुख नाहिन सेज सुहावै है॥
सोना कर धर सीस भला अति तकिया ख्याल न आवै है।
'ललितकिसोरी' नाम हरीका जपि-जपि मन सचु पावै है॥
अब बिलंब जनि करो लाड़िली कृपा-दृष्टि टुक हेरो।
जमुना-पुलिन गलिन गहबरकी बिचरूँ साँझ सबेरो॥
निसिदिन निरखौं जुगल-माधुरी रसिकनते भट-भेरो।
'ललितकिसोरी' तन मन आकुल श्रीबन चहत बसेरो॥

एक नन्दनन्दन प्यारे व्रजचन्द्रकी झाँकी निरखनेके सिवा उसके मनमें फिर कोई लालसा ही नहीं रह जाती, वह अधीर होकर अपनी लालसा प्रकट करता है—

एक लालसा मनमहँ धारूँ।
बंसीवट, कालिन्दी-तट नट-नागर नित्य निहारूँ॥
मुरली-तान-मनोहर सुनि सुनि तनु-सुधि सकल बिसारूँ।
छिन-छिन निरखि झलक अँग-अंगनि पुलकित तन-मन वारूँ॥
रिझऊँ स्याम मनाइ, गाइ गुन, गुंज-माल गल डारूँ।
परमानन्द भूलि सगरौ, जग स्यामहि स्याम पुकारूँ॥

बस, यही तीव्रतम शुभेच्छा है!

नरसीकी हुण्डी

(श्रीहरिकृष्णजी नीखरा)

जूनागढ़में नरसी मेहता नामके एक प्रसिद्ध भक्त हुए हैं। वे सदैव भगवान्‌के भजनमें लीन रहते थे, साधु-सन्तों और दीन-दुखियोंकी मदद करते-करते उनके पासका सारा धन खर्च हो गया।

उनकी दृष्टिमें कोई भेद-भाव नहीं था। वे कण-कणमें परमात्माका दर्शन करते रहते। रूढ़िवादी लोग उनसे सदा अप्रसन्न रहते थे, नाते-रिश्तेदार भी रूठ गये। बेटी सयानी हो गयी, लेकिन उनके पास फूटी कौड़ी भी नहीं थी। उनकी धर्मपत्नी मानेकबाई बार-बार उलाहना दिया करती कि बेटी सयानी हो गयी है, आपको कोई चिन्ता नहीं है, कौन हमारी सहायता करेगा?

भक्त नरसीने खीझ, क्रोध और लाचारीसे परे पत्नीके चेहरेको देखा। मुसकराकर बोले—'प्रिये! चिन्ता क्यों करती हो? सब कुछ मेरे प्रभुपर छोड़ दो, वे स्वयं व्यवस्था करेंगे और हाँ, पिछली रात हमारे सपनेमें भगवान् श्रीकृष्ण आये थे और मुझसे कहा—तुम बेटीकी चिन्ता छोड़ दो, वह तो साक्षात् लक्ष्मी है। द्वारिकाके सेठ सामलदासके पास अपनी आवश्यकताभर रुपयोंकी हुण्डी भेज दो, वह तुम्हें रुपये दे देगा।'

पत्नी प्रसन्न हो गयी। नरसी हुण्डी लिखकर अपने विश्वस्त आदमीको द्वारिकासे हुण्डी भुनाने भेज ही रहे थे, उसी समय छः-सात सन्त आ गये, जो द्वारिकापुरी जा रहे थे। उनके पास नगद रुपये थे, जो चोरीके डरसे नहीं ले जाना चाहते थे। उन्होंने नरसीकी हुण्डी ले ली और रुपये अदा कर दिये। उन्हीं रुपयोंसे नरसीने बेटीकी शादी कर दी। वह ससुराल चली गयी।

उधर द्वारिकामें सन्त लोग सेठ सामलदासको खोजते-खोजते थक गये और बगीचेमें बैठकर बात करने लगे कि नरसीने कहीं हमको ठग तो नहीं लिया। उसी समय एक व्यक्ति सेठके भेषमें आया और कहा—आपलोग नरसीकी हुण्डी लाये हैं, तो दीजिये, हम पैसा अदा कर देते हैं। सन्तोंने हुण्डी दी और रुपये पा गये। सेठने उन्हें दो हजार रुपये अतिरिक्त दिये। सन्तोंने कहा—'हमारे पास कलम नहीं है कि पावतीके हस्ताक्षर कर दें।' सेठ सामलदासने कहा—''कोई बात नहीं है, चिन्ता मत करो, हमारे साथ व्यापार विश्वाससे किये जाते हैं, विश्वास है तो सब ठीक होता है।''

इतिहास साक्षी है कि जिस-जिसने भी प्रभुपर मन, वचन और कर्मसे विश्वास किया। उस प्रभुने उस विश्वासकी रक्षा की, भक्तजनोंको पूरा संरक्षण दिया। उपर्युक्त प्रसंग भी इसी भावको पुष्ट करता है।

भगवद्भक्तिका स्वरूप एवं माहात्म्य

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

जबतक साधकका संसारसे सम्बन्ध रहता है, तबतक उसका भगवान्से सम्बन्ध नहीं होता। संसारसे और शरीरसे सब प्रकारका सम्बन्ध छोड़कर एकमात्र भगवान्से सम्बन्ध जोड़ लेना, भगवान्के सिवा किसीसे कोई नाता न रहना—यही तो भक्ति है। दो सम्बन्ध एक साथ नहीं रह सकते। लड़की जब पिताके घरसे सर्वथा सम्बन्ध छोड़ती है, तब पतिके घरसे सम्बन्ध होता है। जब साधकका शरीर और संसारसे सम्बन्ध ही नहीं रह जाता, तब कोई वस्तु या परिस्थिति उसके लिये आवश्यक कैसे हो सकती है और वह किसी प्रकारकी कामना कर भी कैसे सकता है। जो वस्तुओंकी कामना करता है, वह तो वास्तवमें उन वस्तुओंका ही भक्त है, ईश्वरका नहीं।

भगवान्में पूर्ण विश्वास और नित्य नया प्रेम हो—इसीका नाम भक्ति है।

× × × ×

साधकको चाहिये कि प्रभुको अपना समझे, उनपर दृढ़ विश्वास करे, विश्वासमें विकल्प न आने दे। शरीर, मन, इन्द्रियाँ और बुद्धिको तथा अपने-आपको पूर्णतया भगवान्के समर्पण करके सब प्रकारसे उनपर निर्भर हो जाय। उनपर पूरा भरोसा करे।

भगवान्पर पूरा भरोसा होनेपर ही समर्पण होता है। समर्पण करनेके बाद जो यह देखना है कि कुछ नयापन आया या नहीं, यही भरोसेकी कमी है।

आश्चर्यकी बात तो यह है कि मनुष्य संसारपर जितना भरोसा करता है, उतना भगवान्पर नहीं करता। जैसे कहीं जानेवाला यात्री पहलेसे गाड़ीमें अपना स्थान सुरक्षित करा लेता है, तो उसको यह भरोसा रहता है कि ठीक समयपर स्थान अवश्य मिल जायगा, अत: वह निश्चिन्त हो जाता है, यद्यपि उसमें अनेकों विघ्न भी आ सकते हैं। विघ्न असम्भव नहीं, तो भी उसपर भरोसा कर लेता है। संसारपर भरोसा करके बहुत बार धोखा खाया है एवं भगवान्पर भरोसा करनेवालेको कभी धोखा नहीं हुआ—यह मानते हुए भी मनुष्य भगवान्पर निर्भर नहीं होता, इससे बढ़कर दु:ख और आश्चर्य क्या होगा?

मनुष्य स्वयं अलग रहकर अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको भगवान्में लगाना चाहता है, यहाँसे ही भूल होती है। प्रेमका सम्बन्ध साधकसे है न कि उसके मन, इन्द्रिय और बुद्धिसे। प्रेममार्गमें चलनेवाला पहले तो अपनेको अपने प्रियतमके प्रेमकी लालसा और बादमें प्रेम समझता है, प्रेमी प्रेममें विलीन हो जाता है। प्रेम और प्रेमीमें भिन्नता नहीं रहती। अत: प्रेममार्गके पथिकके जीवनमें भगवान्का प्रेम, भरोसा और कृपा सदा सजीव बने रहने चाहिये, भावकी शिथिलता नहीं होनी चाहिये।

मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ तो अहंकी विभूतियाँ हैं, उनमें प्रेम नहीं होता। प्रेम अहंमें होना चाहिये, अहंमें प्रेमकी प्रबलता होनेसे मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ—सब उसीमें विलीन हो जाते हैं। वे अहंके भावका विरोध नहीं करते।

साधकको ध्यानपूर्वक इस बातका मनन करना चाहिये कि मैं सचमुच क्या चाहता हूँ। मेरी वास्तविक आवश्यकता क्या है। जिसके न होनेपर साधक रह सकता है, जिसका वियोग अनिवार्य है, वह उसकी आवश्यकता नहीं हो सकती। सच्ची आवश्यकता उसीकी है, जिसके बिना वह नहीं रह सकता, जो कभी उससे अलग नहीं होता। सोचनेपर यदि यह ज्ञात हो कि ऐसा तो एकमात्र मैं स्वयं ही हूँ तो विचार करना चाहिये कि क्या कभी मैंने अपनेमें रमण किया या मैं संसारमें ही रमण करता रहता हूँ, तब ज्ञात होगा कि संसारमें ही रमण करता रहा हूँ। फिर विचार करनेपर मालूम होगा कि जो अनन्त नित्य-सौन्दर्य और अनन्त नित्य-रसका भण्डार है, उसीकी वास्तविक आवश्यकता है, वह है जीवका नित्य साथी—एकमात्र परमेश्वर। वह कभी भी

जीवका साथ नहीं छोड़ता। जीव स्वयं ही संसारको अपनाकर उसे भूल गया है, उससे विमुख हो गया है।

यह मालूम होनेपर साधकको मान लेना चाहिये कि जिसकी मुझे आवश्यकता है, उससे मेरी देश-कालकी दूरी नहीं है, अतः उसकी प्राप्तिके लिये यह धारणा करना कि अमुक स्थानमें जानेपर या अमुक समयमें मेरी आवश्यकताकी पूर्ति होगी, सर्वथा प्रमाद है। उसकी प्राप्ति वर्तमानमें अभी हो सकती है। मेरे प्रमादने ही, मेरी भूलने ही मुझे उससे विमुख कर रखा है।

जिसको अपना मानकर मैंने अपना सम्बन्ध जोड़ रखा है, वे शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि एवं माता-पिता, भाई-बन्धु और पति-पत्नी आदि तथा समस्त पदार्थ—सभी अनित्य हैं। अतः इनका वियोग अनिवार्य है। इनको अपना मानकर, इनपर विश्वास करके मैं अपने प्रभुसे विमुख हो गया हूँ।

यह निश्चय कर लेनेके बाद साधकको चाहिये कि जिसकी उसे वास्तविक आवश्यकता है, उस परम प्रियतम प्रभुको ही अपना माने, उसीपर विश्वास करे, उसीसे प्रेम करे, उसके सम्मुख हो जाय, एकमात्र उससे ही अनन्य सम्बन्ध रखे और निरन्तर उसीका स्मरण करे।

× × × ×

जब यह बात समझमें आ जाय कि जो कुछ सत्यता, प्रियता और ज्ञान जहाँ-कहीं दीखते हैं, वे सब उसीकी महानता हैं—जैसे प्रत्येक मिठाईमें मीठापन चीनीका ही है, लड्डू, जलेबी, बर्फी, रसगुल्ला और कलाकन्द आदि सभी चीनीको लेकर ही मीठे हैं—तो सब समय निरन्तर उसकी स्मृति रह सकती है। मनुष्यका सबसे अधिक प्रेम उससे होना चाहिये, जो उसके निकटतम है। यह नियम है कि जिसमें प्रेम होता है, उसकी स्मृति अपने-आप होती है। अतः साधकको देखना चाहिये कि मेरे अत्यन्त समीप कौन है ? क्योंकि सुन्दर जीवनको विकसित करनेके लिये अपने निकटतमको देखना परम आवश्यक है। विचार करनेपर ज्ञात होगा कि हाथ-पैर-आँख आदि इन्द्रियोंको छोड़कर भी मनुष्य प्राणको रखना चाहता है। अतः उनकी अपेक्षा भी प्राण अधिक निकट है। प्राणोंसे अत्यन्त निकट वह है, जिसके लिये प्राणोंका भी त्याग किया जा सके। वह है अपना नित्य साथी परमेश्वर, जो जीवसे कभी अलग नहीं होता। वही जीवका अपना है। जो साधक दूरीसे बचकर अत्यन्त निकटतमका होकर रहता है, उसकी ओर सबका आकर्षण हो जाता है। अत्यन्त निकटतामें सब कुछ है; क्योंकि वही सबका केन्द्र है, जो अत्यन्त निकट है।

× × × ×

वे हमारे प्रियतम प्रभु असीम हैं, अनन्त हैं। असीमका वर्णन नहीं हो सकता, परंतु उनको प्राप्त किया जा सकता है। वे जीवको उसके साधनसे नहीं, किंतु स्वयं अपनी कृपाशक्तिसे द्रवित होकर मिलते हैं।

जीवका स्वभाव तो बालक-जैसा है और प्रभुका स्वभाव माँके सदृश। जब यह जीव बालककी भाँति प्रभुको पानेके लिये व्याकुल होकर रोने लग जाता है, तब उनमें करुणा उत्पन्न हो जाती है और वे जीवको निहाल कर देते हैं। जगत् एक खिलौना है। जबतक जीव बालककी भाँति इस जगत्रूप खिलौनेसे खेलता रहता है, इसे प्रभुके प्रेमरसकी भूख नहीं लगती, उसके लिये यह व्याकुल नहीं होता, तबतक भगवान् भी तमाशा देखते रहते हैं, उसे मिलते नहीं। पर जब साधकको बालककी भाँति भूख लग जाती है अर्थात् जैसे भूख लगनेपर बालक माँका दूध पीनेके लिये व्याकुल हो जाता है, खिलौनेका मोह छोड़कर, उसको फेंककर माँको पुकारने लग जाता है, वैसे ही जब प्रभुके प्रेमरसकी भूख लग जाती है और इस जगत्रूप खिलौनेसे विरक्त होकर साधक प्रभुके प्रेमरसके लिये व्याकुल होकर उसको पुकारने लगता है, तब प्रभु भी करुणाभावसे व्याकुल हो उठते हैं। फिर विलम्ब नहीं कर सकते। वे तत्काल ही प्रेमी साधकको अपना प्रेमरस प्रदान कर देते हैं।

साधकोंके प्रति—

बुद्धिमान् बनजारा

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

एक बनजारा था। वह बैलोंपर मेट (मुल्तानी मिट्टी) लादकर दिल्लीकी तरफ आ रहा था। रास्तेमें कई गाँवोंसे गुजरते समय उसकी बहुत-सी मेट बिक गयी। बैलोंकी पीठपर लदे बोरे आधे तो खाली हो गये और आधे भरे रह गये। अब वे बैलोंकी पीठपर टिकें कैसे? क्योंकि भार एक तरफ हो गया! नौकरोंने पूछा कि क्या करें? बनजारा बोला—'अरे! सोचते क्या हो, बोरोंके एक तरफ रेत (बालू) भर लो। यह राजस्थानकी जमीन है, यहाँ रेत बहुत है।' नौकरोंने वैसा ही किया। बैलोंकी पीठपर एक तरफ आधे बोरेमें मेट हो गयी और दूसरी तरफ आधे बोरेमें रेत हो गयी।

दिल्लीसे एक सज्जन उधर आ रहे थे। उन्होंने बैलोंपर लदे बोरोंमेंसे एक तरफ रेत झरते हुए देखी तो वे बोले कि बोरोंमें एक तरफ रेत क्यों भरी है? नौकरोंने कहा—'सन्तुलन करनेके लिये।' वे सज्जन बोले—'अरे! यह तुम क्या मूर्खता करते हो? तुम्हारा मालिक और तुम एक-से ही हो। बैलोंपर मुफ्तमें ही भार ढोकर उनको मार रहे हो! मेटके आधे-आधे दो बोरोंको एक ही जगह बाँध दो तो कम-से-कम आधे बैल तो बिना भारके खुले चलेंगे।' नौकरोंने कहा कि आपकी बात तो ठीक जँचती है, पर हम वही करेंगे, जो हमारा मालिक कहेगा। आप जाकर हमारे मालिकसे यह बात कहो और उनसे हमें हुक्म दिलवाओ। वह मालिक (बनजारे)-से मिला और उससे बात कही। बनजारेने पूछा कि आप कहाँके हैं? कहाँ जा रहे हैं? उसने कहा कि मैं भिवानीका रहनेवाला हूँ। रुपये कमानेके लिये दिल्ली गया था। कुछ दिन वहाँ रहा, फिर बीमार हो गया। जो थोड़े रुपये कमाये थे, वे खर्च हो गये। व्यापारमें घाटा लग गया। पासमें कुछ रहा नहीं तो विचार किया कि घर चलना चाहिये। उसकी बात सुनकर बनजारा नौकरोंसे बोला कि इनकी सम्मति मत लो। अपने जैसे चलते हैं, वैसे ही चलो। इनकी बुद्धि तो अच्छी दीखती है, पर उसका नतीजा ठीक नहीं निकलता। अगर ठीक निकलता तो ये धनवान् हो जाते। हमारी बुद्धि भले ही ठीक न दीखे, पर उसका नतीजा ठीक होता है। मैंने कभी अपने काममें घाटा नहीं खाया।

बनजारा अपने बैलोंको लेकर दिल्ली पहुँचा। वहाँ उसने जमीन खरीदकर मेट और रेत दोनोंका अलग-अलग ढेर लगा दिया और नौकरोंसे कहा कि बैलोंको जंगलमें ले जाओ और जहाँ चारा-पानी हो, वहाँ उनको रखो। यहाँ उनको चारा खिलायेंगे तो नफा कैसे कमायेंगे? मेट बिकनी शुरू हो गयी। उधर दिल्लीका बादशाह बीमार हो गया। वैद्यने सलाह दी कि अगर बादशाह राजस्थानके धोरे (रेतके टीले)-पर रहें तो उनका शरीर ठीक हो सकता है। रेतमें शरीरको नीरोग करनेकी शक्ति होती है। अतः बादशाहको राजस्थान भेजो।

'राजस्थान क्यों भेजें? वहाँकी रेत यहीं मँगा लो!'

'ठीक बात है। रेत लानेके लिये ऊँटको भेजो।'

'ऊँट क्यों भेजें? यहीं बाजारमें रेत मिल जायगी।'

'बाजारमें कैसे मिल जायगी?'

'अरे! दिल्लीका बाजार है, यहाँ सब कुछ मिलता है! मैंने एक जगह रेतका ढेर लगा हुआ देखा है।'

'अच्छा! तो फिर जल्दी रेत मँगवा लो।'

बादशाहके आदमी बनजारेके पास गये और उससे पूछा कि रेत क्या भाव है? बनजारा बोला कि चाहे मेट खरीदो, चाहे रेत खरीदो, एक ही भाव है। दोनों बैलोंपर बराबर तुलकर आये हैं। बादशाहके आदमियोंने वह सारी रेत खरीद ली। अगर बनजारा दिल्लीसे आये उस सज्जनकी बात मानता तो ये मुफ्तके रुपये कैसे मिलते? इससे सिद्ध हुआ कि बनजारेकी बुद्धि ठीक काम करती थी।

इस कहानीसे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि जिन्होंने अपनी वास्तविक उन्नति कर ली है, जिनका विवेक विकसित हो चुका है, जिनको तत्त्वका अनुभव हो चुका है, जिन्होंने अपने दुःख, सन्ताप, अशान्ति आदिको मिटा दिया है, ऐसे सन्त-महात्माओंकी बात मान लेनी चाहिये; क्योंकि उनकी बुद्धिका नतीजा अच्छा हुआ है। जैसे, किसीने व्यापारमें बहुत धन कमाया हो तो वह जैसा कहे, वैसा ही हम करेंगे तो हमें भी लाभ होगा। उनको लाभ हुआ है तो हमें लाभ क्यों नहीं होगा? ऐसे ही हम सन्त-महात्माओंकी बात मानेंगे तो हमारेको भी अवश्य लाभ होगा। उनकी बात समझमें न आये, तो भी मान लेनी चाहिये।

शिवलिंगका तात्पर्य और रहस्य

(डॉ० श्रीरामलखन सिंहजी, एम०ए०, पी-एच०डी०)

भव्य भावन भूतेश भगवान् शंकर प्राणिजगत्‌की भवबाधाओंको हरनेके लिये विभिन्न रूपोंमें अवतार लिया करते हैं। यह उनकी कारुण्य-लीला एक तरहसे उनका स्वभाव ही है, जो उनकी आशुतोष कल्याणमयी वृत्तिका परिचायक है। परमात्माके निर्गुण, निराकार, निर्विकार स्वरूपका साक्षात्कार तो महर्षियों और योगर्षियोंके लिये भी दुर्लभ रहा है, फिर सामान्य जनोंकी तो बात ही क्या? अतः फाल्गुनमासकी कृष्णपक्षीय चतुर्दशीकी महानिशामें शिवलिंगके रूपमें उनका प्राकट्य मानवजातिके लिये महाप्रसाद ही कहा जायगा। पुराणोंमें भी 'महाशिवरात्रि' को महापर्वकी संज्ञा दी गयी है। महाशिवरात्रि तथा महामृत्युंजय-मन्त्रसे उपासना—दोनों ही शिवलिंगके अभिन्न अंग हैं। वैसे तो प्रत्येक माहकी कृष्ण चतुर्दशीको शिवरात्रि कहा जाता है और उसी रात्रिकी महानिशामें मृत्युंजय-मन्त्रका जप भी सार्थक माना गया है, किंतु महाशिवरात्रिमें किया गया मृत्युंजय-जप महामृत्युंजय-मन्त्र बन जाता है। मृत्युंजय-मन्त्र मृत्युसम्बन्धी सामान्य कष्टोंका निवारण तो कर देता है, किंतु बार-बार जन्म लेने तथा मरनेकी महाव्याधिको समाप्त करनेकी क्षमता तो एकमात्र महामृत्युंजय-मन्त्रके जपमें ही है, जिसकी सिद्धि महाशिवरात्रिमें सहज ही प्राप्त की जा सकती है। इससे शिवलिंगके प्राकट्यका महत्त्व और बढ़ जाता है।

'शेरते प्राणिनो यत्र स शिवः' अर्थात् संसारके पाप-तापोंसे सन्तप्त प्राणी जहाँ विश्राम पा जाते हैं, उस देवताको शिवकी संज्ञा दी गयी है। **लयनाल्लिङ्गमुच्यते—** इस व्याख्यासे लिंग शब्दको प्रलयका उद्भावक माना गया है। लेकिन लिंग शब्द सृष्टिके उद्भवका भी प्रतीक है। सामान्य जनोंकी दृष्टिमें लिंग और योनिके सामंजस्यमें ही प्राणियोंका जन्म सम्भव हो सकता है। लेकिन सृष्टिका लय भी अन्ततोगत्वा शिवलिंगमें ही समाहित है। शिवलिंगकी स्थापना योनिरूपी अर्घामें ही करनेकी परम्परा है। इसका उद्देश्य प्रकृति और पुरुषमें सामरस्य दर्शाना ही है। महाशिवरात्रि शिव और पार्वतीके महामिलनकी महानिशा भी है। इसीसे संसारकी सृष्टि भी सम्भव है और अन्तमें इसीमें सृष्टिका प्रलय भी हो जाता है। मृत्युकी महानिशामें प्राणियोंकी सम्भोग-वासना भी वृद्धावस्थामें क्षीण होकर भस्मीभूत हो जाती है। यही **'लयनाल्लिङ्गमुच्यते'** का निहितार्थ भी है।

लययोगको कुण्डलिनीयोग भी कहा जाता है तथा शाम्भवी-विद्या भी इसीका रूपान्तर है। कुण्डलिनी तो महाशक्ति है ही, जो मानवदेहमें लिंगप्रदेशको अपने साढ़े तीन फेरेसे वेष्टित किये हुए है। उसी शक्तिके संयोगसे शिव अनन्त ब्रह्माण्डका उत्पादनादि कार्य सम्पन्न करते हैं। यह कुण्डलिनी ही वह योनि तथा जलहरी है, जो विक्षुब्ध शिवलिंगको सम्हालनेमें समर्थ है। इसी योनिको पार्वती तथा शाम्भवी भी कहा गया है। लिंगको कूटस्थ निश्चल ब्रह्म माना गया है। शाम्भवी-विद्या आदिशक्ति उमास्वरूपिणी कही गयी है। मूलाधारमें स्थित यह शक्ति लिंगके परम विक्षुब्ध होनेपर ही जाग्रत् होती है और षट्चक्रोंका भेदन करते हुए सहस्रार चक्रमें पहुँचकर शिवके साथ संयोगकर परमामृतसे सन्तृप्त होकर पुनः मूलाधारमें वापस आ जाती है। यही लिंगकी शिवशक्त्यात्मक परमानन्दस्वरूप निर्विकल्प समाधिकी ओर भक्तको ले जानेवाली परमसिद्धि भी है।

वस्तुतः शिवलिंग जीवके आत्मस्वरूपका ही प्रतीक है। जबतक जीवात्मा अपने आत्मरूपमें जाग्रत् नहीं होती, तबतक स्वप्नवत् भासित होनेवाला यह जगत्प्रपंच उसे विक्षुब्ध और भयाक्रान्त बनाये रखता है। उसके तमाम सारे जन्मान्तर इसी मिथ्याभयकी प्रतीतिमें व्यतीत हो जाते हैं। अन्ततः शिवलिंगकी उपासनाके पश्चात् उसे अपने आत्मस्वरूपका बोध हो ही जाता है। यहीं उसकी अज्ञान निद्रा खत्म होती है और उसके जगत्प्रपंचका पूर्णतया आत्मस्वरूपमें लय हो जाता

है। भगवान् रामने अपने लीलावतारमें इसी आत्मस्वरूपको पहचानने और पकड़नेके लिये मानवजातिको शिवलिंगकी पूजा तथा उपासना करनेकी महत्त्वपूर्ण शिक्षा प्रदान की है। ब्रह्मस्वरूप होते हुए भी वे मानवीय देहाध्यासके मायापाशमें अपनेको जकड़ लेते हैं और सीताके भेषमें अपनी मायारूपिणी प्रियाके वियोगमें उसको ढूँढ़ते हुए अनुज लक्ष्मणके साथ वन-वन भटकते रहते हैं। विरह-वेदनासे व्याकुल अन्ततः वे अपनी वानरी सेनाके साथ समुद्र-तटपर पहुँचते हैं। वहाँ वे बालुकाराशिसे सेतुबन्ध रामेश्वरम्‌में शिवलिंगकी स्थापना करते हैं। ***'करिहउँ इहाँ संभु थापना। मोरे हृदयँ परम कलपना॥'*** शिवलिंगकी उपासनासे उनको परमसिद्धि प्राप्त होती है, उन्हें अपने आत्मस्वरूपका बोध होता है, शिवशक्त्यात्मकस्वरूपकी अखण्डता और अभिन्नताका संज्ञान लेते हुए वे आगे बढ़ते हैं। वे जान जाते हैं कि यह संसाररूपी महासमुद्र, सोनेकी लंका, अशोकवाटिकामें मायारूपी सीता, रावण-कुम्भकरण और मेघनाद-जैसे राक्षसी वृत्तिवाले योद्धा—ये सभी आत्मस्वरूपमें भासित होनेवाले जगत्प्रपंचके अलावा और कुछ नहीं हैं। ये सब मायाके नेपथ्यमें पलनेवाली नकली जीवयोनियाँ हैं। शिवसे रावण-विजयका अद्भुत वरदान पाकर तथा परिकरबद्ध होकर वे आसुरी सेनाके साथ युद्ध करते हैं। यह लंकाकाण्ड ही मायाप्रपंचके विनाशका एक विलक्षण अध्याय है। शिवकी ही प्रेरणासे उन्होंने रावणको परास्त करनेके लिये नवरात्रके व्रतका अद्भुत अनुष्ठान किया था। कुण्डलिनी शक्तिके जागरण तथा षट्चक्रोंके भेदनके पश्चात् शिवस्वरूप सहस्रार-चक्रमें उन्होंने कुण्डलिनीको समाहित होते हुए देखा था। यही शिवशक्त्यात्मक मिलन और महाशिवरात्रिकी महानिशामें उनकी मधुरात्रिके अलौकिक दर्शन भी किये थे। यहाँ द्रष्टव्य है कि जिस प्रकार भगवान् शिव अपनी प्राणप्रिया शक्तिस्वरूपिणी उमासे सर्वथा अभिन्न हैं, उसी प्रकार भगवान् राम भी जगज्जननी सीतासे सर्वथा अभिन्न एवं एकाकार हैं। रावणके पराभवके पश्चात् अशोकवाटिकासे जो सीता उनके पास लायी गयीं, वे तो नकली थीं, यह तो उनका मायास्वरूप था। असली सीताने तो पहले ही अग्निसमाधि ले ली थी। भगवान् रामने अग्निपरीक्षाके द्वारा असली सीताको अंगीकार किया। यह उनकी नरलीलाका एक अध्याय था।

भारतभूमि रत्नगर्भा और देवभूमि कही गयी है। पृथ्वीसे लेकर आकाशतक अनेक देवी-देवता ग्रहों-नक्षत्रोंके रूपमें फैले हुए हैं। सूर्य और चन्द्रमा तो स्वयं भगवत्स्वरूप तथा उनकी विभूतियाँ ही हैं। यहाँकी धरतीमें सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, कोयलाके तमाम भण्डार हैं, जिन्हें खननद्वारा प्राप्त करके मानवजाति अपनी सुख-सम्पदाका विस्तार करती जा रही है। भगवान् राम और कृष्णने मनुष्यरूपमें जन्म लेकर असुरोंके संहार तथा दैवी-सम्पदाओंका विस्तार किया था। वे भगवान्‌के सगुण-साकार अवतार थे। इसके विपरीत भगवान् शिवने परमात्माके निर्गुण, निराकार, निर्विकार, निरामय, निर्विकल्प ओंकारस्वरूप शिवलिंगोंके रूपमें धरतीसे प्रकट होकर अपने भक्तोंको निष्क्रिय, निःशब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धरहित अपने आनन्दस्वरूप विग्रहसे परिचित कराया। उन्होंने कुलीनों और श्रीमानोंके यहाँ जन्म न लेकर वन-प्रान्तरों, पहाड़ों और निर्जन स्थानोंमें अपने सच्चिदानन्दस्वरूपको दर्शानेके लिये द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके रूपमें प्रकट करना ही उचित समझा। यह प्रकृति और पुरुषकी विलक्षण एकताका आध्यात्मिक दर्शन था। आज भी हजारों भक्त दूर-दूरसे पदयात्रा करके काँवर लेकर उनके पास जाते हैं और गंगाजल, दूध, बिल्वपत्रादि समर्पण करके अपनेको धन्य मानते हैं। इससे उनकी अनेक भवबाधाएँ दूर हो जाती हैं तथा मनोकामनाओंकी पूर्ति भी हो जाती है। आत्मस्वरूप तथा तत्त्वबोध ही शिवलिंगका वास्तविक स्वरूप है। ज्ञान ही उसकी पराकाष्ठा है।

न तन हूँ न मन हूँ न जन हूँ न धन हूँ।
न मैं वासनामय जगत् की तपन हूँ।
शिवानंदरूप चिदानंद घन हूँ।
अनंत अखंड दिगंतम् गगन हूँ।

श्रीमद्भगवद्गीताके माध्यमसे भगवद्दर्शन

(डॉ० श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त)

मानवजीवनका एकमात्र लक्ष्य आत्मदर्शन है। गीताके लेखनका भी यही उद्देश्य है कि '**आत्मा वै ज्ञातव्यः**'।

आत्मा या परमात्मा कौन है? उसका स्वरूप कैसा है? वह किस प्रकारसे जाना जा सकता है? आत्म या परमात्मदर्शनमें कौन-कौनसे बाधक तत्त्व हैं? इस प्रकारकी जिज्ञासाएँ सहज ही उत्पन्न होती हैं। श्रीमद्भगवद्गीता उक्त सभी प्रश्नों एवं जिज्ञासाओंका सहज समाधान प्रस्तुत करती है।

परमात्मरूपके विषयमें श्रीमद्भागवत-महापुराणमें उल्लेख है कि—

सच्चिदानन्दरूपाय विश्वोत्पत्त्यादिहेतवे।
तापत्रयविनाशाय श्रीकृष्णाय वयं नुमः॥

(श्रीमद्भागवत-माहात्म्य, अ० १, श्लो० १)

उक्तसे स्पष्ट है कि परमात्मा 'सच्चिदानन्दस्वरूप' है। भक्तकवि गोस्वामी तुलसीदासजीने भी परमेश्वरके रूपके विषयमें लिखा है कि—

जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन॥

(रा०च०मा० १।५०।३)

श्रीमद्भगवद्गीतामें परब्रह्म परमेश्वरका स्वरूप इस प्रकार उल्लिखित है कि—

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति॥

(गीता २।१७)

गीता स्पष्ट करती है कि आत्मरूप परमात्मा सच्चिदानन्दरूप ही है। यथा—

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥

(गीता १७।२३)

स्पष्ट है कि परमात्मा सच्चिदानन्द त्रिगुणसम्पन्न है। गीतामें परमात्माको अक्षर अर्थात् कभी भी नष्ट न होनेवाला कहा है। यथा—

'**अक्षरं ब्रह्म परमं।**' (गीता ८।३)

और भी उल्लेख है कि—

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये॥

(गीता ८।११)

अन्यत्र भी कहा गया है कि—

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे॥

(गीता ११।१८)

उपर्युक्त प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि परमात्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है। वह अव्यक्त है, अक्षय है, अक्षर है। वह सर्वव्यापक एवं परमप्रकाशक है।

अब प्रश्न उठता है कि सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा कहाँ निवास करता है? श्रीमद्भगवद्गीता परमात्माके निवासके विषयमें उल्लेख करता है कि—

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥

(गीता १०।२०)

अन्यत्र भी कहा गया है कि—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

(गीता १८।६१)

उपर्युक्तसे स्पष्ट है कि गीताके अनुसार परमात्माका निवास समस्त प्राणियोंके हृदयमें है।

अब जिज्ञासा होती है कि परमात्माका दर्शन या साक्षात्कार किस प्रकारसे सम्भव है। इस विषयमें गीतामें उल्लेख है कि 'ईश्वर' विनय, उत्कण्ठा एवं सेवा-भावनासे प्रत्यक्ष होता है। यथा—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

(गीता ४।३४)

गीता यह भी कहती है कि परमात्माकी प्राप्तिमें श्रद्धामात्र ही साधक है। यथोल्लेख है कि—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ४।३९)

श्रद्धाभावके स्थायित्वके लिये गीताकार अभ्यासकी आवश्यकताको निरूपित करते हैं। यथा—

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥

(गीता ८।८)

और भी उल्लेख है कि—

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय॥

(गीता १२।९)

आत्मा या परमात्माकी प्राप्तिमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर बाधक तत्त्व हैं। गीतामें स्पष्ट कहा गया है कि कामक्रोधादि आत्मसाक्षात्कारमें बाधक हैं एवं ये प्राणिमात्रके लिये उसके शत्रु हैं। ब्रह्मसाक्षात्कारके लिये इन विकारोंका परिहार अनिवार्य है। यथोल्लेख है कि—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

(गीता ३।३७)

अन्यत्र भी कहा गया है कि अहंकारादि विकारोंसे रहित व्यक्ति ही ब्रह्ममय हो जाता है। यथा—

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

(गीता १८।५३)

वस्तुतः परमेश्वरके प्रति समर्पण, आस्था एवं भक्तिभाव ही परमात्माका सहज सान्निध्य कराते हैं। श्रीमद्भगवद्गीतामें तद्विषयक विचार इस प्रकार प्रस्तुत है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥

(गीता ९।३४)

और भी उल्लेख है कि—

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

(गीता ११।५५)

इस प्रकार निर्विकारी, अनासक्त एवं आत्मचिन्तनमें अनुरत व्यक्ति ब्रह्मस्वरूपका अनुभव करता है। यथोल्लेख है कि—

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥

(गीता ६।२७)

निष्कर्ष यह है कि मानमोहरहित एवं भौतिक पदार्थोंमें अनासक्त व्यक्ति द्वन्द्वातीत हुआ उस परमतत्त्वसे साक्षात्कारका अनुभव करता है। प्रस्तुत छन्द उक्तभावको सुस्पष्ट कर देता है। यथा—

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा-
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥

(गीता १५।५)

अस्तु, श्रीमद्भगवद्गीता स्पष्ट करती है कि सहज, सरल, निश्छल सुकर्मी व्यक्तिको परमात्म-साक्षात्कार सहज एवं सुकर है।

गीता-सन्देश

(राष्ट्रकवि श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त)

भगवान् कहते हैं स्वयं ही, भेद-भावों को तजे,
है रूप मेरा ही, मुझे जो सर्व भूतों में भजे।
जो जानता सबमें मुझे, सबको मुझी में जानता,
है मानता मुझको वही, मैं भी उसी को मानता॥

हे भाइयो! भगवान् के आदेश का पालन करो,
अनुदार भाव-कलंक-रूपी पंक प्रक्षालन करो।
नवनीत-तुल्य दयार्द्र हो सब भाइयों के ताप में
सबमें समझकर आपको, सबको समझ लो आपमें॥

कुसंग सर्वथा परित्याज्य

(श्रीभगवानलालजी शर्मा 'प्रेमी')

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह।
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि॥

सिंह, व्याघ्र प्रभृति वनपशुओंके साथ पर्वतों और दुर्गम स्थानोंमें घूमना अच्छा, पर मूर्खका सहवास इन्द्रभवनमें भी भला नहीं।

मनुष्यके न पहुँच सकनेयोग्य दुर्गम पहाड़ों और भयानक घोर जंगलोंमें सिंह, व्याघ्र आदि हिंसा करनेवाले जानवरोंमें रहकर जिन्दगीको खतरेमें डालना कहीं अच्छा, पर मूर्खके साथ मेल-जोल, दोस्ती और परिचय करके स्वर्ग-समान सुखोंका भोगना किसी दशामें भी भला नहीं। दरिद्रताका जीवन-यापन करना भला, पर मूर्ख या दुष्टके साथ अमीरीके सुख भोगना भला नहीं।

किसी और महापुरुषने भी कहा है—

वरं शून्या शाला न च खलु वरो दुष्टवृषभो
वरं वेश्या पत्नी न पुनरविनीता कुलवधूः।
वरं वासोऽरण्ये न पुनरविवेकाधिपपुरे
वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः॥

सूनी गोशाला भली, पर दुष्ट बैल अच्छा नहीं, वेश्या-पत्नी अच्छी, पर अविनीता कुलवधू भली नहीं, वनमें बसना अच्छा, पर अविवेकी—अविचारवान्‌के राज्यमें रहना भला नहीं, मर जाना भला, पर नीचका साथ करना अच्छा नहीं है।

हितोपदेशमें कहा है—

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम्।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम्॥

दुर्जनोंका संसर्ग त्याग, सज्जनोंका संग और सदा संसारकी अनित्यताका ध्यान रखकर, दिन-रात पुण्य संचय कर। और भी कहा है—

न स्थातव्यं न गन्तव्यं दुर्जनेन समं क्वचित्।
काकसंगाद्धतो हंसस्तिष्ठन् गच्छंश्च वर्त्तकः॥

दुष्टके साथ न रहना चाहिये और न उसके साथ चलना चाहिये। पंचतन्त्रमें कथा आती है कि कौवेके साथ रहनेसे हंस और साथ चलनेसे बटेर मारा गया।

मनुष्य जैसेकी संगति करता है, वैसा ही हो जाता है। हीनकी संगतिसे हीन, समानकी संगतिसे समान और उच्चकी संगतिसे उच्च हो जाता है। जो मूर्ख और दुष्टोंकी संगति करता है, वह स्वयं मूर्ख हो जाता और अपनी तथा अपने मूर्ख साथियोंकी संगतिसे विविध प्रकारके क्लेश और दु:ख भोग करता है, इसीलिये मूर्ख और दुष्टोंके संग रहने-सहने, चलने-फिरने और बोलने-चालनेतककी मनाही की गयी है, क्योंकि दुष्ट अपने अच्छे-से-अच्छे साथीको अपने-जैसा बना लेते हैं।

कुसंग सर्वथा परित्याज्य है। कुसंगके समान सर्वनाशक और कुछ भी नहीं है। जिन लोगोंका अध:पतन हुआ है—उनसे पूछिये, तो उनमेंसे प्राय: सभी अपने अध:पतनका कारण कुसंग ही बतायेंगे। संसारमें कुपथगामियोंकी संख्या बहुत है। ये लोग भले आदमियोंको खराब-खराब किस्से-कहानियाँ सुनाकर, वेश्याओंके यहाँ ले जाकर, थिएटरके तमाशे दिखाकर—अनेक प्रकारके आचरण करके और प्रलोभन देकर बेदाग आदमियोंको खराब कर देते हैं। मूर्खोंके साथ रहकर मनुष्य लड़ना-भिड़ना, जुआ खेलना, चोरी करना, शराब पीना, ऐय्याशी करना—ऐसे ही गन्दे काम सीखता है।

मूर्ख और दुष्टोंके साथ रहनेसे काम, क्रोध, लोभ, मोहकी उत्पत्ति होती है और स्मृति तथा बुद्धिका नाश होता है। नीचोंके दृष्टान्तसे, उनके साथ कुसंगीत सुनने और खराब पुस्तकें पढ़नेसे मनुष्यके दिलमें स्वभावसे ही कामकी उत्पत्ति होती है—भोग-लालसा बलवती होती है और जब भोगेच्छाकी परितृप्ति नहीं होती, उसमें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित होती है, तब क्रोधका उद्रेक होता है। क्रोधसे मोहकी उत्पत्ति होती है। उस समय मनुष्यका चित्त अन्धकारावृत हो जाता है। चित्तमें अँधेरा होते ही स्मृतिभ्रम होता है अर्थात् जो कुछ ज्ञान संचित हुआ था, दृष्टान्त देखकर या शास्त्र पढ़कर जो सत्पथानुरागी होनेकी इच्छा हुई थी, वह सर्वथा नष्ट हो जाती है। इस तरह स्मृति-विभ्रम होनेसे ही बुद्धि नष्ट

हो जाती है। बुद्धि-नाश होनेसे मनुष्यकी वैसी ही दशा होती है, जैसी कि नावका पाल टूट जानेसे नावकी होती है। बहुत क्या कहें, बुद्धिके नाशसे सर्वनाश ही हो जाता है। मूर्ख और नीचोंके संग रहनेसे उस बुद्धिका ही नाश हो जाता है, जिसके बिना मनुष्य इस जगत्में एक क्षण भी स्थित नहीं रह सकता; इसीसे महापुरुषोंने मूर्खोंकी संगतिसे वन्य पशुओंकी संगति अच्छी कही है। उनके साथ रहकर मनुष्य कदाचित् जीवन-रक्षा कर भी ले, पर इनके साथ मनुष्यकी खैर नहीं। उसके खा जानेसे तो मनुष्यका केवल जीवन ही नष्ट होता है—परलोक नहीं बिगड़ता; पर इनकी संगतिसे पद-पदपर विपत्तियाँ झेलनी पड़ती हैं, लोग थू-थू करते हैं और प्राण-नाश होनेपर परलोक बिगड़ जाता है। कहाँतक कहें, मूर्खोंके संगसे सिंह प्रभृति भयानक जन्तुओंका संग लाख दर्जे सुखदायी है।

लंकेश रावण नीतिशास्त्रका धुरन्धर पण्डित था; पर शूर्पणखा-जैसी मूर्खाने उसकी मति क्षणभरमें बिगाड़ दी। उसको जनकनन्दिनीके अलौकिक रूप-लावण्यकी बात सुनाकर पागल कर दिया। शूर्पणखाकी बातोंसे ही उसके चित्तमें कामकी उत्पत्ति हुई। भय तो उसे किसीका था ही नहीं; कामातुर होनेसे वह पूरा निर्लज्ज बन गया। चुपचाप आकर, यतिका भेष धरकर, जगज्जननी सीता माताको जबरदस्ती उठा ले गया। रामचन्द्रजीने अपने मित्र सुग्रीव और हनुमान् प्रभृति वानरोंकी सहायतासे वानर-दल लेकर लंकापर चढ़ायी की। जब रावणको अपनी भोग-लालसामें बाधा उपस्थित होती दिखायी दी; वह एकदमसे क्रोधान्ध हो गया। क्रोधान्ध होनेसे उसका चित्त भी अन्धकाराच्छन्न हो गया। शास्त्र और नीतिको पढ़कर जो अपूर्व ज्ञान उसने संचित किया था, वह सब नष्ट हो गया। रही-सही बुद्धि भी नष्ट हो गयी। इसीसे विभीषण, कुम्भकर्ण, मन्दोदरी प्रभृति हितचिन्तकोंके समझानेसे भी वह न माना और जगत्पति रामचन्द्रजीसे लड़नेको तैयार हो गया। परिणाम जो हुआ, उसे संसारमें कौन नहीं जानता है? जिसके घरमें एक लाख पूत और सवा लाख नाती थे, उसके घरमें दिया जलानेवाला भी न रहा! यह सब क्यों हुआ? एकमात्र मूर्खा शूर्पणखाकी कुसंगति और कुमन्त्रणासे। कहते हैं कि दुष्टका पड़ोस भी बुरा। रावणके पड़ोसमें बसनेसे बेचारा समुद्र वृथा ही बाँधा गया। अगर वह रावण-जैसे नीचके पड़ोसमें नहीं होता, तो उसकी दुर्गति क्यों होती? दुष्ट तो कुकर्म करते हैं, उनका फल भले आदमियोंको भी भोगना पड़ता है।

'हितोपदेश'में कहा है—

खलः करोति दुर्वृत्तं नूनं फलति साधुषु।
दशाननोऽहरत्सीतां बन्धनं स्यान्महोदधेः॥

खल—दुष्ट जो दुष्कर्म करता है, उसका फल साधुओंको निश्चय ही भोगना होता है। रावणने सीताहरण किया और बेचारा समुद्र बाँधा गया।

अगर हम मूर्ख-संसर्गके दोषोंको इसी तरह समझाते चले जायँगे, तो इस विषयपर एक बड़ा पोथा तैयार हो जायगा। यह हमारा अभीष्ट नहीं, इसलिये मूर्खकी परिभाषा समझाकर ही, हम इस विषयको समाप्त करेंगे; क्योंकि नासमझ और नातजुर्बेकार लोग केवल अनपढ़-निरक्षरोंको ही मूर्ख समझते हैं, पर मूर्ख पढ़े-लिखे भी होते हैं और बिना पढ़े भी। जर्मनीमें एक कहावत है—'पढ़े-लिखे लोग मूर्खोंसे भी अधिक खतरनाक होते हैं।' मनुष्यकी अनपढ़ मूर्खोंसे जितनी बुराई होती है, उसकी अपेक्षा पढ़े-लिखे मूर्खोंसे बहुत अधिक होती है। निरक्षर मूर्ख साधारण सर्पोंके समान होते हैं; किंतु साक्षर पढ़े-लिखे मूर्ख मणिधारी कालसर्पके समान भयंकर होते हैं।

असल बात यह है, जो मनुष्य मूर्खोंके-से काम करे, वही मूर्ख है; चाहे वह पढ़ा-लिखा हो और चाहे अनपढ़ हो। चाणक्यने कहा है—

मूर्खस्तु परिहर्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः।
भिनत्ति वाक्यशल्येन ह्यदृशं कण्टको यथा॥

मूर्खसे दूर रहना ही उचित है; क्योंकि वह देखनेमें मनुष्य है, पर यथार्थमें दो पैरका पशु है, जिस तरह अन्धेको काँटा बेधता है, उसी तरह वह अपने वाक्य-रूपी तीरसे मनुष्यके हृदयमें छेद कर देता है।

वनचर सँग रहवो सुखद, बन पर्वत के माहिं।
पै मूरख-सँग स्वर्गहू, दुखयुत संशय नाहिं॥

योगिराज कल्याण स्वामीकी अद्भुत गुरुभक्ति

(सौ० मधुवन्ती मकरन्दजी मराठे पूर्वनाम कु० रोहिणी गोखले)

एक बार श्रीसमर्थ सद्‌गुरु श्रीरामदास स्वामीजीका कीर्तन कोल्हापुर नगरमें हो रहा था। तब पाराजी पन्त पारगाँवकर नामके एक गृहस्थ कीर्तन सुनने आया करते थे। सद्‌गुरु श्रीसमर्थ रामदास स्वामीजीके कीर्तन और विचारोंसे प्रभावित होकर उन्होंने उन्हें अपने घर भोजन करने आनेका न्योता दिया। दूसरे दिन श्रीसमर्थ उनके घर भोजन करनेके लिये गये। समर्थ जहाँ कहीं भी जाते, तो वहाँके लोगोंके आचरण और सद्‌गुणोंकी परख करते रहते थे। उनकी निरीक्षण क्षमता अद्भुत थी। उनको वहाँपर एक अम्बादास नामक १२-१३ सालका बालक दिखा, जिसे 'अम्बाजी' नामसे घरमें पुकारा जाता था। वह बालक बहुत होशियार था। बिना गलती किये बताये गये सभी काम कर रहा था। उसके बारेमें पूछनेपर पता चला कि वह कृष्णाजी पन्त बाभुळगाँवकरका और पारगाँवकरकी बहनका बेटा है, जो विधवा है और अपने भाईके परिवारके साथ ही रहती है।

श्रीसमर्थ रामदासस्वामीजीने भोजन करनेके बाद उस लड़केकी बुद्धिमत्ता, सुन्दर हस्ताक्षर तथा लेखन कौशलकी परीक्षा कुछ ११ कठिन सवाइयाँ लिखवाकर शुद्ध और जल्द लेखन क्षमता देखकर ली। उसकी कण्ठस्थ की हुई कविताएँ, श्लोक आदि सुनकर कण्ठस्थ करनेकी क्षमता और अद्भुत स्मरण-शक्तिकी भी परीक्षा लेकर उसे अपने सम्प्रदायमें लेनेहेतु उसको माँगा। तब पाराजी पन्तने अपनी बहनसे पूछा। वह बोली—माँ-बेटेको अलग न कीजिये। हमें भी अपने साथ ले जाइये, हम भी आपकी शरणमें हैं। तब पाराजी पन्त, अम्बादास, उसका भाई और माँ इतने लोग समर्थके साथ गये। पाराजी पन्त रत्नागिरीसे वापस कोल्हापुर लौट आये। अब अम्बादास, समर्थ शिष्या अम्बादासकी माँ और समर्थ शिष्या वेणास्वामी साथमें मैसूर गये।

श्रीराम-जन्मोत्सवके माध्यमसे श्रीरामभक्ति और समर्थ-सम्प्रदायके विस्तारके उद्देश्यसे रामनवमीका उत्सव करनेका निश्चय हुआ। मैसूरमें शक १५६७ पार्थिव नाम संवत्सरमें चैत्र शुक्ल प्रतिपदाके दिन उत्सवका आरम्भ हुआ। हनुमान्‌जीकी मूर्तिकी प्रतिस्थापना भी की गयी। सिंहासनाधिष्ठित भगवान् श्रीरामचन्द्रकी मूर्तिकी भव्य शोभायात्रा निकाली गयी। ***'रघुपति राघव राजाराम। पतित पावन सीताराम'*** भजनके गायनके साथ शोभायात्रा बड़े उत्साहसे आगे बढ़ रही थी। इतनेमें एक गहरे बड़े कुएँके पास आमके वृक्षकी शाखासे सिंहासनके पीछेकी ध्वजाएँ और पताकाएँ अटकने लगीं। शोभायात्रा रथके रुकनेसे रुकी। भगवान्‌के रथको आगे बढ़ानेहेतु श्रीसमर्थ सद्‌गुरुने शाखाको काट देनेका आदेश दिया। श्रीसमर्थको यवन अधिकारी रोकने लगे। वे तुरन्त योगमार्गसे बीजापुर दरबारमें पहुँचे और वहाँसे लिखित आदेश लाकर अधिकारियोंको देकर शिष्योंको शाखा काटनेको कहा। सब शिष्य देखते रहे। कुछ पेड़पर चढ़े, जिनमें अम्बादास भी था। वह कुएँपरकी शाखा काटने पहुँचा। समर्थने शाखापर बैठकर शाखाको वृक्षसे अलग करनेको कहा। उसे लोगोंने मना किया कि तुम नीचे गहरे कुएँमें गिर जाओगे, परंतु वह नहीं माना। श्रीसमर्थके आदेशानुसार

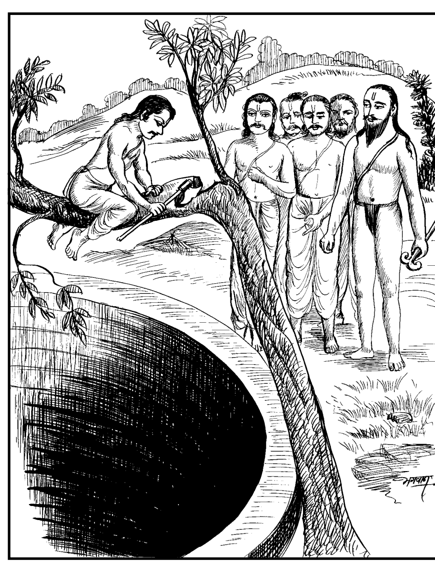

शाखा काटी। शाखा कटते ही पहले शाखा और बादमें अम्बादास कुएँमें गिरे। श्रीसमर्थने पूरा उत्सव समाप्त

होनेपर दूसरे दिन शामके पहले वेणास्वामीके आग्रहसे कुएँके पास जाकर अम्बादासको पुकारा, वह ऊपर आया। ऊपर आनेपर लोगोंने कुएँसे उसे बाहर निकाला। श्रीसमर्थ सद्‌गुरुने पूछा—'कैसे हो?' वह बोला—'आपके आशीर्वादसे कल्याणरूप हूँ।' इसे सुनकर समर्थ सद्‌गुरुने प्रसन्न हो, उसे आलिंगन देकर आशीर्वाद दिया। उसका नाम अम्बादासकी जगह कल्याण रखा। आगे ये इसी कल्याण स्वामी नामसे प्रसिद्ध हुए। ये कल्याण स्वामी श्रीसमर्थ रामदास स्वामीके दासबोध ग्रन्थके लेखक हुए।

इनके जीवनके अनेक अद्भुत प्रसंग हैं, जिनके कारण इनका जीवन श्रीसमर्थकी कृपासे परिपूर्ण हो गया। ये श्रीसमर्थ सद्‌गुरु रामदास स्वामीजीके प्रति एकनिष्ठ और उनके आज्ञापालनहेतु तो प्रसिद्ध हैं ही; ब्रह्मचर्य, शारीरिक बल, कुशाग्र बुद्धि, कार्यकुशलता, धैर्य, निर्भयता, उद्यमशीलता और नम्रताके लिये भी ये वैसे ही प्रसिद्ध थे।

सज्जनगढ़पर दो बड़े हण्डे हैं, जो बहुत वजनदार हैं, उनमें वे उरमोडी नदीतक जाकर जल भरकर लाते। श्रीसमर्थके धोये हुए कपड़े भी आते समय साथमें रहते, इतना सब लेकर वे बहुत ऊपर सज्जनगढ़पर रोज आते-जाते। जैसे वे गुरुकी कठिन सेवा करते थे, वैसे ही रोज १२०० सूर्यनमस्कार भी करते और बालोपासना करते। श्रीरामजन्मोत्सवकी शोभायात्रा चाफळ मठसे हमेशा हाथीपरसे निकलती थी, एक बारकी बात है, लोगोंकी भीड़ शोभायात्रा देखने जमा थी। इतनेमें हाथीको सजाया ही था कि वह उन्मत्त हो गया और चिंघाड़ता हुआ लोगोंकी भीड़में जा घुसा। वह महावतके काबूसे बाहर हो गया। उस यात्रामें कल्याण स्वामी थे। उन्हें पुकारकर समर्थ सद्‌गुरु बोले—'कल्याण! देखते क्या हो, हाथीको रोको।'

इतना सुनते ही कल्याण स्वामी पैतरा लेकर बाहु ठोंकते हुए हाथीके सामने खड़े हो गये। उन्होंने हाथीको ललकारा। गुस्सेसे भरा हाथी मुड़कर कल्याणकी तरफ दौड़ पड़ा। कल्याण स्वामीका दायाँ हाथ सूँड़की पकड़में आ गया। उन्होंने बायें हाथसे हाथीका दाँत पकड़कर जोरसे खींचकर उसको समूल उखाड़ दिया। हाथी असहनीय पीड़ा और अपमानसे क्रोधित हो गया और सूँड़की पकड़ और अधिक कसने लगा। कल्याण स्वामीने दाहिने हाथका मुक्का बनाकर उसके गण्डस्थलपर बहुत जोरसे प्रहार किया। हाथीकी आँखोंके सामने जुगनू चमकने लगे और चीं-चीं करता हुआ वह जमीनपर गिर गया। उसकी उन्मत्तता भी कम हो गयी।

परमात्मप्राप्तिमें बाधक है—अहंकार

(आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)

सन्त कबीर कहते हैं—

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं॥

प्रेमकी विलक्षण रीति है कि उसमें 'मैं-पन' अर्थात् अपने व्यक्तित्वका अहंकार त्यागना आवश्यक है। प्रेमके लिये परमात्मा एकसे दो होते हैं और प्रेमके वश होकर पुनः एक हो जाते हैं। प्रेममें अभेदता, अभिन्नता अथवा अनन्यता अनिवार्य है, तभी अनन्त रसकी अनुभूति हो पाती है। मीराबाई कहती हैं—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
तात मात भ्रात बंधु आपनो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥

श्रीरामचरितमानसमें सुन्दरकाण्डका प्रसंग है। हनुमान्‌जी सीताजीके पास भगवान् रामका सन्देश लेकर जाते हैं और कहते हैं 'हे माता! मनमें ग्लानि न मानिये। श्रीरामचन्द्रजीके हृदयमें आपसे दूना प्रेम

है।' ऐसा कहकर हनुमान्‌जी प्रेमसे गद्‌गद होकर नेत्रोंमें प्रेमाश्रुओंका जल भरकर भगवान् श्रीरामका सन्देश सीताजीको सुनाते हैं—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥

(रा०च०मा० ५।१५।६-७)

'हे प्रिये! मेरे और तेरे प्रेमका तत्त्व (रहस्य) एक मेरा मन ही जानता है और वह मन सदा तेरे ही पास रहता है। बस, मेरे प्रेमका सार इतनेमें ही समझ ले।'

गीतामें कर्मयोगके सन्दर्भमें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥

(३।२७)

सम्पूर्ण कर्म सब प्रकारसे प्रकृतिके गुणोंद्वारा किये जाते हैं, परंतु अहंकारसे मोहित अन्तःकरणवाला अज्ञानी मनुष्य 'मैं कर्ता हूँ'—ऐसा मान लेता है।

वास्तवमें जीव अपनी विभिन्न कामनाओंके अधीन होकर ही कर्म करता है और उन कर्मोंका कर्ता और भोक्ता बनकर सुखी-दुखी होता रहता है। उसके चेतन स्वरूपमें कभी कोई क्रिया होती ही नहीं '**शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते**' (गीता १३।३१)।

जैसे परमात्मा सृष्टि-रचनाका कर्म करके भी आकाशकी भाँति निर्लिप्त रहते हैं, ऐसे ही जीवात्मा भी उन्हींका अंश होनेके कारण देहमें लिप्त नहीं होता है। जड़ प्रकृतिके अंश 'अहम्' को पकड़नेके कारण यह अपना ही एक अलग संसार रच लेता है और जीवनपर्यन्त उसीमें मोहित होकर कर्मबन्धनमें बँधता रहता है।

कर्मयोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग अथवा किसी योगमार्गपर चलें, परमात्मासे योग करनेके लिये अपने अहंकारका त्याग करना होगा। कर्मयोगमें अपने क्षुद्र स्वार्थोंका त्याग करके हमें निष्काम भावसे जगत्‌के हितके लिये कर्म करने होंगे, ज्ञानयोगमें हमें शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और अहंकारयुक्त जड़ प्रकृतिका त्याग करके चेतन स्वरूपमें स्थित होना होगा, ध्यानयोगमें धैर्ययुक्त बुद्धिके द्वारा संसारसे धीरे-धीरे उपराम होकर मन, बुद्धि इत्यादिको परमात्मामें लय करना होगा तथा भक्तियोगमें समस्त कर्तव्य-कर्मोंको भगवान्‌में समर्पित करते हुए उन्हींकी शरणमें जाना होगा। कहनेका तात्पर्य यह है कि अपनी जड़-प्रकृतिके मलिन अहंका त्याग करते हुए चेतन प्रकृति अथवा स्वरूपके शुद्ध अहंसे साक्षात् करना होगा।

इस सम्बन्धमें छत्रपति शिवाजीके जीवनका एक दृष्टान्त प्रेरणास्पद है। एक बार शिवाजी अपने राज्यद्वारा हो रहे निर्माण-कार्योंका निरीक्षण कर रहे थे। अनेक मजदूर कार्यमें लगे हुए थे और शिवाजी उन्हें देखकर प्रसन्न हो रहे थे कि वे कितने मजदूरोंका जीवन-निर्वाह कर रहे हैं। सर्वज्ञ सन्त समर्थ गुरु रामदास जान गये कि उनके शिष्य शिवाके मनमें अहंकारका बीज अंकुरित हो गया है। वे उसे नष्ट करना चाहते थे। अपनी योगशक्तिसे समर्थ गुरु उसी समय शिवाजीके आगे प्रकट हो गये। अनायास अपने गुरुदेवको वहाँ उपस्थित देखकर शिवाजी कुछ समझ नहीं पाये। तभी गुरुदेवने कहा—'शिवा! यह जो सामने शिला पड़ी है, इसे मजदूरोंसे तुड़वा दो।' शिलाको तोड़ा गया तो उसके बीचमें थोड़ा जल था और उसमें एक मेढक बैठा हुआ था। गुरुदेवने पूछा—'शिवा! मेढकका जीवन-निर्वाह कौन कर रहा है?' शिवाजी समझ गये कि गुरुदेव मेरे भीतर छिपे अहंकारको समाप्त करनेके लिये ही प्रकट हुए हैं। वे तुरन्त गुरुदेवके चरणोंमें गिर पड़े और क्षमा-याचना की। इस प्रकार सद्‌गुरु अथवा परमात्मा हमें समय-समयपर सावधान करते रहते हैं कि अपने 'मैं-पन' का त्याग करनेसे ही परमात्माकी प्राप्ति सम्भव है।

मृत्युके पश्चात्

(श्रीप्रशान्तकुमारजी रस्तोगी)

'मनुष्यकी मृत्युके पश्चात् उसकी क्या गति होती है?', यह प्रश्न सदैवसे ही अत्यन्त रहस्यपूर्ण रहा है। आधुनिक विज्ञान नि:सन्देह इस समय उन्नतिके शिखरपर है तथा यह भी जानता है कि प्रत्येक मनुष्य मरणधर्मा है, फिर भी यह न जान सका कि मनुष्यकी मृत्यु क्यों होती है तथा मृत्यूपरान्त उसकी क्या गति होती है? इस विषयमें वेद-उपनिषदोंका कथन तो पूर्ण है। पाश्चात्त्य विद्वानोंने भी काफी अनुसन्धान किये, किंतु अबतकका उनका ज्ञान शून्यके समान प्रतीत होता है। फिर भी इस विषयका चिन्तन अपेक्षणीय है।

वस्तुत: मनुष्यकी देहके अन्त होनेपर जो तत्त्व प्रयाण करता है अथवा निष्क्रमण करता है, वह आत्मा है। ऋग्वेदमें[१] इसका अर्थ प्राण अथवा जीवनाधार (आध्यात्मिक तत्त्व) बताया गया है। धीरे-धीरे इसका अर्थ आत्मा अथवा अहं हो गया। इसी आत्मा नामक तत्त्वके न रहनेपर मनुष्य मृत हो जाता है।

छान्दोग्य[२] उपनिषद्से ज्ञात होता है कि मरनेवाले पुरुषकी वाणी मनमें, मन प्राणमें, प्राण तेजमें तथा तेज परदेवतामें लीन हो जाता है। इस प्रकार जीव जब अपनी ज्ञानेन्द्रियोंको हृदयमें लीन कर लेता है, तब हृदयका अग्रभाग प्रकाशित हो जाता है। उसके प्रकाशित होनेसे 'जीव' नेत्र-कान-मुख-मूर्धा आदि स्थानोंसे उत्क्रमण करता है। इसी प्रकार बृहदारण्यक[३] उपनिषद्से ज्ञात होता है कि मृत्युके समय मृतपुरुषकी वाणी अग्निमें, प्राण वायुमें, चक्षु आदित्यमें, मन चन्द्रमामें, श्रोत्र दिशामें, शरीर पृथ्वीमें, हृदयाकाश भूताकाशमें, रोम ओषधियोंमें और केश वनस्पतियोंमें लीन हो जाते हैं तथा रक्त एवं वीर्य जलमें स्थापित हो जाते हैं। प्राणोंके उत्क्रमणके समय आत्मा विशेष विज्ञानवान् होता है और विज्ञानयुक्त प्रदेशको ही जाता है। उस समय उनके साथ ज्ञान, कर्म एवं पूर्वप्रज्ञा (अनुभूत विषयोंकी वासनाएँ) भी जाते हैं।[४] ऐसी अवस्थामें सर्वप्रथम वह वायुको प्राप्त होता है, तत्पश्चात् सूर्यलोक एवं चन्द्रलोक होता हुआ अशोक (शारीरिक दु:खोंसे रहित) एवं 'अहिम्' (मानसिक दु:खोंसे रहित) लोकमें पहुँचकर अनन्तकालतक अर्थात् ब्रह्माके अनेक कल्पोंतक निवास करता है।[५]

उपनिषदोंके अनुसार प्रत्येक मनुष्यके उत्क्रमणमें मार्गोंका अन्तर होता है।[६] विद्वान् एवं ज्ञानी पुरुष केवल मूर्धा (ब्रह्मरन्ध्र)-से ही उत्क्रमण करते हैं। वे सुषुम्णा नाड़ीका अवलम्बन लेकर मूर्धाको चीरते हुए प्रयाण कर जाते हैं। उनका दाह-संस्कार किया जाय अथवा न किया जाय, वे देवयान (देवलोक)-को प्राप्त होते हुए ब्रह्ममय हो जाते हैं।[७] देवयानको जाते समय वे सर्वप्रथम दिनके प्रकाश तत्पश्चात् शुक्लपक्षीय दशा, षाण्मासकीय दशा, देवलोक, आदित्यलोक, विद्युत्लोक तत्पश्चात् ब्रह्मलोकको प्राप्त हो जाते हैं तथा इस संसारमें पुन: लौटकर कभी नहीं आते। वे परब्रह्म पदको प्राप्त करते हुए उसी परब्रह्ममें लीन हो जाते हैं।[८] इसके विपरीत एक स्थानपर उल्लेख है कि जो मनुष्य अकाम, निष्काम, आप्तकाम एवं आत्मकाम होता है, उसके प्राणोंका उत्क्रमण नहीं होता, वह ब्रह्म ही रहकर ब्रह्मको

१-ऋग्वेद १०। १६। ३
२-छान्दोग्य उपनिषद् ६। ८। ६, बृहदारण्यक उपनिषद् ४। ४। १-२
३-बृहदारण्यक उपनिषद् ३। २। १३
४-वही ४। ४। २
५-वही ५। १०। १
६-छान्दोग्य उपनिषद् ८। ६। ६
७-बृहदारण्यक उपनिषद् ६। २। १५, छान्दोग्य उपनिषद् ४। १५। ५
८-बृहदारण्यक उपनिषद् ६। २। १

प्राप्त करता है।[१] जिस समय इसके हृदयमें आश्रित सम्पूर्ण कामनाओंका नाश हो जाता है, उस समय वह मरणधर्मा अमृत हो जाता है और यहीं (इसी शरीरमें) उसे ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है,[२] मोक्षके मार्ग (ब्रह्ममार्ग)-के विषयमें विद्वानोंमें मतभेद है। कोई इस मार्गको शुक्ल एवं नीलवर्ण बताता है तथा कोई पिंगल, कोई हरित और कोई लाल बताता है। किंतु यह मार्ग साक्षात् ब्रह्मद्वारा अनुमोदित है। इस मार्गसे प्रयाण करनेवाला परमात्मतेज:स्वरूप ब्रह्म-वेत्ता हो जाता है।[३] एक स्थानपर उल्लेख है कि जो व्यक्ति आत्माको महान्, अजन्मा, अजर, अमर, अमृत एवं अभय ब्रह्म मानते हैं, वे अभय ब्रह्म हो जाते हैं।[४]

द्वितीय प्रकारके व्यक्ति जो कर्म करनेवाले होते हैं, वे पितृयानसे पितृलोकको जाते हैं। सर्वप्रथम वे चिताके धूमसे रात्रिको तत्पश्चात् कृष्णपक्ष, दक्षिणायन छः मास, पितृलोक तथा बादमें चन्द्रलोकको जाते हैं। वहाँपर अपने कर्मोंका फल पाते हैं तथा पुण्य समाप्त होनेके पश्चात् प्रथम आकाश फिर वायु एवं वृष्टिके रूपमें पृथ्वीपर आते हैं और अन्नके साथ पहले पुरुषमें फिर स्त्रीमें पुरुषके वीर्यसे जन्म लेते हैं।[५]

तृतीय प्रकारके वे व्यक्ति होते हैं जो देवयान एवं पितृयान जानेकी योग्यता नहीं रखते हैं। वे आवागमनके चक्रमें लगे रहते हैं तथा अपने कर्मका फल भोगनेके लिये निरन्तर कीट-पतंग-मच्छर आदि योनियोंमें उत्पन्न होते हैं।[६]

आत्माकी इस उपर्युक्त सत्ताको कतिपय पाश्चात्त्य विद्वान् नहीं स्वीकार करते हैं। ब्रैडले नामक विद्वान् यह तो मानते हैं कि प्रत्येक पदार्थसे पृथक् हो जाना शून्यके समान है, किंतु वे आत्माकी सत्ताको नहीं स्वीकार करते।[७] ब्रैडलेके अनुसार ऐसा अहं या आत्मा जो अपने राशिभूत आत्मिक अनुभवोंके पूरकोंसे पूर्व एवं परे भी विद्यमान रहनेका दावा करता है—एक नितान्त कोरी कल्पना-मात्र एवं मिथ्या है और केवल एक विशालकाय दानव ही होगा, जिसे किसी भी प्रयोजनके लिये हम स्वीकार नहीं कर सकते।[८] इसके विपरीत डॉ० मैक्टैगर्ट आत्माकी सत्ताको स्वीकार करते हुए कहते हैं कि आत्माके अभ्यन्तरमें प्रत्येक वस्तु निहित है तथा आत्माको प्रत्येक वस्तुका ज्ञान होता है और आत्माके पृथक् कोई भी वस्तु नहीं है।[९] शंकराचार्यका कथन है—'आत्मा अपना अस्तित्व एवं अपनी स्थिति दोनों ही विश्वात्मासे प्राप्त करता है;[१०] अर्थात् आत्माका विश्वात्मा परमात्मारूपी एकाकार, सामंजस्यभाव ही है; आत्मा परमात्माका अंशरूप है, अत: प्रत्येक पदार्थकी इससे पृथक् कल्पनातक नहीं की जा सकती। अत: आत्माकी सार्वभौमिकता तथा आत्मासे पदार्थोंकी सार्वभौमिकता स्पष्ट है। अब यदि मृत्यूपरान्त आत्माकी इस स्थितिको पाश्चात्त्य विद्वान् न स्वीकार करें तो दोष किसका, यह आपपर ही निर्भर है।[११]

१-बृहदारण्यक उपनिषद् ४। ४। ६

२-वही ४। ४। ७

३-वही ४। ४। ९

४-वही ५। ४। २४-२५

५-वही ६। २। १६

६-बृहदारण्यक उपनिषद् ६। २। १६

७-ब्रैडले—एथिकल स्टडीज ५२

८-ब्रैडले—अपियरेन्स एण्ड रियलटी-८९

९-डॉ० मैक्टैगर्ट—हेमलियन कास्मोलॉजी-विभाग २७

१०-शंकर—इण्ट्रोडक्शन टु वेदान्तसूत्र

११-मृत्युके पश्चात् आत्माकी स्थितिके सम्बन्धमें कठोपनिषद् आदि उपनिषद्में, गीता आदि ग्रन्थ एवं दर्शन द्रष्टव्य हैं।

'मैं' नहीं 'तू'

(डॉ० श्रीफूलचन्द प्रसादजी गुप्त)

दु:खको ईश्वरका वरदान कहा गया है। दु:खमें व्यक्ति 'मैं'से वियुक्त और ईश्वरसे संयुक्त होता है। वास्तवमें व्यक्ति दु:खमें ही ईश्वरके सबसे करीब होता है। कबीरदास अपनी अनुभूत वाणीमें कहते हैं—***'दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय।'*** दु:खमें 'मैं' और 'मेरा' का लोप हो जाता है। 'मैं' चूर-चूर हो जाता है।

कौरवोंकी भरी सभामें जब द्रौपदीके चीरहरणका प्रयास किया जा रहा था, उस समय जबतक द्रौपदीने 'मैं' और 'मेरे' से संयुक्त होकर संघर्ष किया, तबतक उसके लाज बचनेकी कोई आशा नहीं थी। पर जैसे ही सांसारिक मोह अर्थात् 'मेरे'का त्यागकर ईश्वरसे संयुक्त हुई, लाज बच गयी। पहले तो द्रौपदीका कुलवधू होनेका 'मैं' लड़ता रहा और बादमें वह 'मेरे'के साथ लड़ी। उसने भरी सभामें धृतराष्ट्र, भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य एवं महात्मा विदुरकी ओर आशा और विश्वाससे देखा तथा न्यायकी पुकार की, पर सब निष्फल रहा और जैसे ही समस्त सांसारिक रिश्तोंसे मुँह मोड़कर भगवान् श्रीकृष्णको पुकारा, भगवान्ने द्रौपदीकी लाजकी रक्षा तत्क्षण की। गोस्वामीजीने कहा है—***'तुलसिदास मैं मोर गये बिनु जिउ सुख कबहुँ न पावै।'*** (विनय-पत्रिका-१२०)

कबीरने ईश्वरको 'तू' कहा है। ***'तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझसे रही न हूँ'*** (सुमिरणको अंग-९) 'हूँ'की समाप्तिपर ही 'तू'से निकटता प्राप्त होती है। 'हूँ' जैसे ही मिटता है, वैसे ही जीव ***'जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है'*** की अनुभूति करने लगता है। 'तू'की सत्ता स्वीकार करते ही आत्मविस्तार हो जाता है, फिर समस्त प्रकारकी सीमाएँ (बन्धन) टूट जाती हैं। '**सर्वे भवन्तु सुखिनः**'का भाव प्रकट होने लगता है। अपने-परायेका भेद मिट जाता है। दृष्टिभेद समाप्त हो जाता है। तब गोस्वामी तुलसीदास कह उठते हैं—***'सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥'***

महायोगी गोरखनाथजीने ***'आपा भांजिबा'***कहकर 'मैं'को छोड़नेके लिये कहा है और अहंकारको ईश्वर-साक्षात्कारमें बाधक बताया है। 'मैं'के निकलनेपर ही शरीरस्थ शिवका ज्ञान होता है। 'मैं' दूसरेके अस्तित्वको स्वीकार नहीं करता। 'मैं'की उपस्थितिमें 'तू' की अनुभूति नहीं हो सकती। गोरखनाथजी कहते हैं—***'घट घट गोरष फिरै निरूता। को घट जागै को घट सूता॥'*** 'मैं' है तो ईश्वर नहीं, ईश्वर है तो 'मैं' नहीं।

'मैं' तोड़ता है, खण्डित करता है, बाँटता है। 'मैं' छोटा बनाता है। 'मैं'की सीमा संकीर्ण होती है। 'मैं' सह अस्तित्वको स्वीकार नहीं करता। 'मैं'के भावके साथ किये गये कर्मसे सफलता और सिद्धि नहीं मिलती, बल्कि क्लेश और बन्धन उत्पन्न होते हैं। 'मैं' प्रेम और भक्तिमें बाधक है। 'मैं' के रहते ईश्वर-साक्षात्कार असम्भव है।

कबीरने 'मैं'को बहुत बड़ा संकट माना है। वे कहते हैं कि यदि सामर्थ्य हो तो उसे भगा दो। रुईमें लपेटी हुई अग्नि कबतक रुईको जलानेसे रोकी जा सकती है, अर्थात् यह 'मैं' एक-न-एक दिन मनुष्यको नष्ट ही कर देता है।

मैं मैं बड़ी बलाइ है, सकै तो निकली भाजि।
कब लग राखौं हे सखी, रुई लपेटी आगि॥

भौतिक उपलब्धि और पद-प्रतिष्ठाकी प्राप्तिने मनुष्यके 'मैं'को और बड़ा कर दिया है। रिश्तोंके बीच बढ़ता तनाव, पारिवारिक विघटन, बिगड़ता सामाजिक सौहार्द और राष्ट्रोंके बीच बढ़ती कटुता 'मैं'के कारण है। बड़े-से और बड़े होनेकी चाहतने मनुष्यको मनुष्य नहीं रहने दिया है। 'मैं' दूसरेके अस्तित्वको स्वीकार नहीं करता। वह चाहता है कि लोग मुझे बड़े होनेका सुख प्रदान करते रहें। इसके अभावमें संघर्ष उत्पन्न हो जाता है, फिर अपनेको

बड़ा सिद्ध करने अर्थात् अपने 'मैं'को तुष्ट करनेमें व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र आपसमें संघर्ष करते दिखायी देते हैं। बारूदके ढेरपर बैठी दुनिया अपने 'मैं'की तुष्टिके लिये विध्वंसके मार्गपर चल पड़ी है। इस मार्गसे विमुख करनेका उपाय अध्यात्म ही दे सकता है। वही 'तू' यानी ईश्वरसे जोड़कर 'मैं'से मुक्ति दिला सकता है। अध्यात्मके मार्गपर चलकर ही मायासे उत्पन्न 'मैं'को समाप्त किया जा सकता है। अध्यात्म ही वह मार्ग बता सकता है कि कल्याण 'मैं' से नहीं, 'तू' अर्थात् ईश्वरसे जुड़नेसे होगा।

व्यक्ति ही नहीं, सम्पूर्ण चराचर जगत्का जीवन सह अस्तित्वसे रचित है। एक बीज मिट्टी, वायु, जल, प्रकाशसे पोषित होकर ही जीवन धारण करता है, फिर वह अंकुरित होकर पल्लवित और पुष्पित होता है। मनुष्यका जीवन भी सह अस्तित्वपर टिका है। एक माँ बच्चेको जन्म और जीवन देती है; पिता पालन करता है, परिवारीजन उसके सम्बल होते हैं, शिक्षक और गुरु उसमें मानवताके गुण भरते हैं, समाज उसे व्यवहार-कुशल बनाता है अर्थात् उसका जीवन सह अस्तित्वके साथ ऊर्ध्वगामी बनता है। इस बातको समझ लेने और स्वीकार कर लेनेपर 'मैं'की सत्ता समाप्त हो जाती है। व्यक्ति माता-पिता, परिवारीजन, शिक्षक, गुरु, समाज और राष्ट्रका ऋणी अपने-आपको मानने लगता है। परिवार, समाज और राष्ट्रका जीवन भी सह अस्तित्वपर निर्भर होता है। भगवान् श्रीरामने वानर-भालुओंके बलपर श्रीरामसेतुका निर्माण किया। वे चाहते तो स्वयं ही उस सेतुका निर्माण कर सकते थे, पर उन्होंने सहयोग लिया। इसी सहयुक्ततासे रावणपर विजय प्राप्त की। भगवान् होते हुए भी उन्होंने यथोचित सम्मान देकर उनके अस्तित्वको स्वीकार किया। वहीं रावण 'मैं'के साथ अकेला पड़ा रहा। उसके 'मैं'ने न उसे लंकाके समाजसे जुड़ने दिया और न सैनिकोंसे। उसने अपने सैनिकोंका सम्मान भी नहीं किया। वह 'मैं'के बन्धनसे छूट नहीं पाया और पराजय तथा विनाशको प्राप्त हुआ।

वास्तवमें संसार 'मैं'के जालमें फँसा हुआ है। हर कोई अपनेको बड़ा दिखानेके लिये प्रयत्नशील है। ऐसेमें 'तू' से जुड़कर ही मानवीय मूल्योंके संवर्द्धन और संरक्षणमें अपना अमूल्य अवदान किया जा सकता है।

रामनाम सुखधाम

(आचार्य श्रीभानुदत्तजी त्रिपाठी 'मधुरेश')

श्रीराम जपो, श्रीराम जपो, श्रीराम जपो श्रीराम।
रामनाम जपनेसे सबके पूरे होते काम॥

सदा-सर्वदा रामनामकी महिमा अमित-अपार,
रामनाममें नित्य निहित है अग-जगका उपचार।
नारदकी वीणामें झंकृत रामनाम अविराम,
श्रीराम जपो, श्रीराम जपो, श्रीराम जपो श्रीराम॥

रामनाम शिव जपते रहते, उरमें धरते ध्यान,
ब्रह्म रामसे भी बढ़कर है रामनाम बलवान।
वेद-पुराण सभीमें गूँजे रामनाम अभिराम,
श्रीराम जपो, श्रीराम जपो, श्रीराम जपो श्रीराम॥

मंगलभवन अमंगलहारी रामनाम सुखमूल,
रामनामसे कट जाते हैं भवके सारे शूल।
रामनामके बिना न कोई पा सकता विश्राम,
श्रीराम जपो, श्रीराम जपो, श्रीराम जपो श्रीराम॥

रामनाम ही महामन्त्र है, भवसे देता तार,
रामनामसे गणिकाका भी हुआ सहज उद्धार।
रामनाम-रसपान करो नित जो जगमें बिन दाम,
श्रीराम जपो, श्रीराम जपो, श्रीराम जपो श्रीराम॥

सब नामोंमें रामनाम है नित्य नवल मधुमास,
रामनाम भर देता जनके जीवनमें उल्लास।
है 'मधुरेश' सभीको सब दिन रामनाम सुखधाम,
श्रीराम जपो, श्रीराम जपो, श्रीराम जपो श्रीराम॥

पुरुषार्थ और कृपा

(डॉ० श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

भगवान् पुरुषार्थ-लभ्य हैं या कृपा-लभ्य—यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न साधकोंके मनमें कभी-कभी उठा करता है। श्रुतियोंमें दोनों ही प्रकारके सिद्धान्त अभिव्यंजित होते दीख पड़ते हैं—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो
न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात्।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वां-
स्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम॥

(मुण्डकोपनिषत् ३।२।४)

अर्थात् 'यह आत्मा (आत्मस्वरूप परब्रह्म) आत्मबलरहित, प्रमादी, ज्ञानसाधनारहित तथा संन्यासहीनको प्राप्त नहीं होता, जो विद्वान् आत्मबल आदि उक्त उपायोंका अवलम्बन लेकर (सतत) प्रयासरत रहता है, उसको इसकी प्राप्ति (साक्षात्कार या तादात्म्यानुभूति) होती है।'

यह पुरुषार्थपरक श्रुति है। इससे यही सिद्ध होता है कि भगवान्‌की प्राप्तिरूप-साधनाका पथ अत्यन्त जागरूकता और पौरुषका पथ है। इसीको महात्मा कबीरदास इस प्रकार स्वीकारते हैं—

जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।
हौं बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठ॥

किंतु यदि प्रभुकी प्राप्ति केवल पुरुषार्थसे ही होनी है, तो अत्यन्त दीन-हीन-शक्ति-सम्बल-विरहित उस शरणागत भक्तका क्या होगा, जो चाहकर भी कुछ साधन नहीं कर पाता, केवल '**मामेकं शरणं व्रज।**' (गीता)-की भगवदुक्तिके बलपर निश्चिन्त रहता है कि—

कबहुँ तौ दीनदयाल के भनक परैगी कान।

और वैसी स्थितिमें फिर तो संसारमें जो-जो आत्मबलसम्पन्न, ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी अर्थात् पुरुषार्थी लोग हैं, उन सबको ही नियतरूपसे भगवत्प्राप्ति हो जाया करती, किंतु शास्त्र-प्रमाण और महापुरुषोंके अनुभवसे इस नियमका पता नहीं चलता। दूसरी श्रुति, इसी उपनिषद्‌में इससे ठीक पहले तथा कठोपनिषद्‌में भी इस प्रकार प्राप्त होती है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥

(मुण्डक० ३।२।३ तथा कठ० १।२।२३)

अर्थात् 'यह आत्मरूप परमप्रभु न तो वेद-शास्त्रादिका प्रवचन करनेसे न ही बहुत बुद्धि-व्यायाम अथवा अनेक विद्याओंके श्रवण आदि करनेसे ही प्राप्त होते हैं, किंतु जो इनको (अपने शरण्यके रूपमें) वरण कर लेता है, उसके प्रति ये अपने स्वरूप और तत्त्वको स्वयमेव अनावृत कर देते हैं।' गोस्वामी तुलसीदासजी भी इसी तथ्यका समर्थन करते हुए कहते हैं—***'सो जानइ जेहि देहु जनाई।'*** (मानस)

प्रश्न यह है कि इन दोनों श्रुतिवाक्योंमें क्रमशः (यहाँ उद्धृत किये गये क्रमके अनुसार) '**पुरुषार्थ**' और '**कृपा**' दोनोंका समबलत्वेन भगवत्प्राप्ति-साधनके रूपमें निर्देश दिखलायी पड़ता है, इसलिये परस्पर '**अंगांगिभाव**' भी नहीं बन सकता अर्थात् यह नहीं कह सकते कि 'कृपाबोधक' श्रुतिका अंग 'पुरुषार्थबोधक' श्रुति है या 'पुरुषार्थबोधक' श्रुतिका अंग 'कृपाबोधक' श्रुति है। प्रकरणकी एकताकी दृष्टिसे यहाँ '**अधिकारि-भेद**' की भी कल्पना नहीं की जा सकती; तब फिर तथ्य क्या है—भगवान् कृपालभ्य हैं या पुरुषार्थ-लभ्य?

यहाँ विचार करनेपर यही ज्ञात होता है कि उपर्युक्त तर्क ठीक नहीं है। युक्तिपूर्वक इन दोनों श्रुतियोंका पारस्परिक '**अंगांगिभाव**' भी बन जाता है और तदनुसार अधिकारि-भेदकी कल्पना भी अयुक्त नहीं सिद्ध होती।

मुण्डकोपनिषद्‌में कृपाबोधिका-श्रुतिके प्रथमतया प्राप्त होने तथा उसका उसी रूपमें कठोपनिषद्‌में भी प्राप्त होनेके कारण '**द्विर्बद्धं, सुबद्धं भवति**' इस न्यायसे मुख्यत्व और पुरुषार्थबोधिका गौणत्व सुतरां सिद्ध है, किंतु यतः कृपाकी उपलब्धि या अनुभूतिहेतु अधिकारसिद्ध्यर्थ कुछ पुरुषार्थकी भी आवश्यकता होती है, अतः साधन-पथमें अकिंचित्कर और प्रमादी बनकर निष्क्रिय बैठे रहना भी ठीक नहीं, इसी कारण भगवती श्रुतिने बलशाली बनकर—सम्पूर्ण शक्ति लगाकर साधनमें जुट जानेका आदेश दिया है।

वस्तुतः प्रभु-प्रीतिकी समुपलब्धिका सबसे बड़ा साधन है—पूर्णतया निःसाधन हो जाना। बिना साधन अर्थात् पुरुषार्थ किये अन्तर्मनमें अव्यक्त रूपसे छिपे अहंकार या अन्याश्रयकी व्यर्थता सिद्ध नहीं होती। पालनेमें सोया हुआ छः महीनेका अबोध-निर्बल शिशु भूख लगनेपर दूर-देशपर बैठी हुई माँके पास स्वयं नहीं जा सकता। उसे अपने हृदयरस स्तन्यसे आप्यायित करनेके लिये कृपापूर्वक माँको ही आना पड़ता है, तथापि वह जबतक चुपचाप सोया रहेगा—माँ क्यों आयेगी ? वह जबतक रोता नहीं—हाथ-पैर पटक-पटककर आकुल-व्याकुल नहीं होता, माँ वैसी चिन्ता करके त्वरापूर्वक दौड़कर नहीं आती। यह रोना, हाथ-पैर-उछालना, यद्यपि माँके समीपतक नहीं पहुँचा सकता, किंतु इसी क्रियाका फल है कि स्नेहमयी जननी शिशुके पास स्वयं दौड़कर आ जाती है—क्या शिशुका यह पुरुषार्थ नहीं है ?

एक सन्त कहा करते थे—'तुम भगवान्‌को पाना चाहते हो, तो किसी भी एक दिशामें पूरी शक्ति लगाकर दौड़ो—बस दौड़ते चले जाओ। जब थक जाओगे—जहाँ शिथिल होकर बैठ जाओगे और सिर थाम लोगे, अपनी विवशता और निर्बलतापर फूट-फूटकर रोने लग जाओगे, वहीं वह कौतुकी-कृपामय प्रकट होकर तुम्हें स्वयं अपनी भुजाओंमें भर लेगा।'

प्रेरक-प्रसंग—

गुरु अर्जुनदेवकी विनम्रता

भारतके विख्यात गुरुद्वारोंमें एक विश्वविख्यात गुरुद्वारा है 'श्रीबारठ साहिब'। बारठ साहिब श्रीगुरुनानकदेवजीके ननिहालका गाँव था, परंतु इसकी महत्ता उदासी साधु बाबा श्रीचन्दजीके नामके साथ जुड़ी हुई है। बाबा श्रीचन्दजी श्रीगुरुनानकदेवजीके बड़े सुपुत्र थे। उनके छोटे सुपुत्रका नाम लक्ष्मीचन्द था।

बाबा श्रीचन्दजी उदासी साधु हुए हैं, जिन्होंने शादी नहीं की। बाबा श्रीचन्दजीने लगभग ६२ वर्ष यहाँ तपस्या की। श्रीगुरु अमरदासजी, श्रीगुरु रामदासजी पंचम पातशाही श्रीगुरु अर्जुनदेवजीतक समस्त गुरु बाबा श्रीचन्दजीसे मिलने आते रहे।

जब श्रीगुरु अर्जुनदेवजी श्रीगुरुग्रन्थ साहिबजीका सम्पादन कर रहे थे और स्वयं भी वाणी लिख रहे थे। लगभग १६ अष्टपदियाँ लिखनेके बाद गुरु अर्जुनदेवजी आगे लिखनेमें अटक गये। उनसे आगे वाणी नहीं लिखी जा रही थी। उन्होंने सोचा कि इस समय कौन महापुरुष हो सकता है, जो इस वाणीको आगे लिखनेके लिये बल बख्शे। तब उस समय गुरु अर्जुनदेवजीके हृदयमें बाबा श्रीचन्दजीका ध्यान आया; क्योंकि उस समय सबसे ऊँचे तथा आध्यात्मिक प्रवृत्तिके सन्त बाबा श्रीचन्दजी ही थे। गुरु अर्जुनदेवजी नंगे पाँव अमृतसरसे श्रीबारठ साहिब आये। उस समय बाबा श्रीचन्दजी समाधिमें लीन थे। उन्होंने समाधिसे उठाना या बुलाना ठीक न समझा; क्योंकि समाधिमें लीन सन्तको बुलाना ठीक नहीं। यह गुरु-मर्यादाके विरुद्ध है। इसलिये गुरु अर्जुनदेवजी समाधिवाले स्थानसे लगभग एक फर्लांगकी दूरीपर एक स्थानपर ठहर गये। वहाँसे प्रतिदिन नंगे पाँव आकर समाधिके सामने थोड़ी दूरीपर हाथ जोड़कर खड़े हो जाते। शामतक इन्तजार करते तथा फिर चले जाते। इस तरह ५ महीने तथा १३ दिनतक वे प्रतिदिन प्रातः आते और शामको बाबा श्रीचन्दजीको समाधिमें देखकर वापिस चले जाते। फिर एक दिन अचानक उनकी समाधि खुली तो गुरु अर्जुनदेवजीको पहचानकर उन्होंने कहा, 'आयो! किधर आये हो ? यह दाढ़ी बहुत बढ़ा रखी है।'

गुरु अर्जुनदेवजी नतमस्तक हुए तथा हाथ जोड़कर विनम्र विनय की कि यह दाढ़ी तो आपके चरण साफ करनेके लिये है। तब बाबा श्रीचन्दजीने प्रसन्न होकर कहा कि इसी विनम्रताके कारण ही आप गद्दीके हकदार हैं। आपकी विनम्रता महान् है। फिर गुरु अर्जुनदेवजीने आदरणीय भावसे कहा कि महाराज! मैं सुखमणि साहिबकी वाणीका सम्पादन भी कर रहा हूँ। सुखमणि साहिबकी २४ अष्टपदियाँ लिखनी हैं, परंतु १६ अष्टपदियोंके बाद वाणी लिखी नहीं जा रही। तब बाबा श्रीचन्दजीने आशीर्वाद दिया, इससे वाणी आगे लिखनेमें श्रीगुरु अर्जुनदेवजीको बल मिला। [श्रीबलविन्दरजी बालम]

गायत्री-जपकी महिमा

(श्रीरामकिशोरजी सिंह 'विरागी')

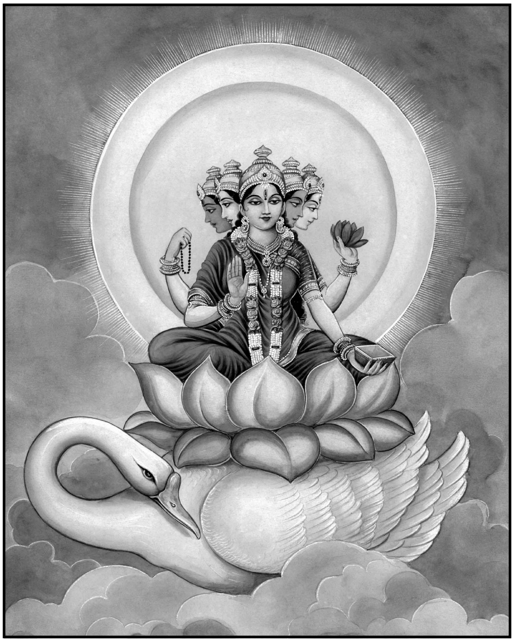

गायत्री-जपके प्रभावसे जीवन श्रेष्ठ बनता है—यह शान्तिकी ओर ले जाता है—सफलताका मार्ग प्रशस्त करता है। वास्तवमें 'कर्म' तो सभी करते रहते हैं। बिना कर्म किये हुए कोई भी एक क्षण भी नहीं रह सकता है। ऐसा भगवान् श्रीकृष्णने 'गीता' में कहा है—

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥

(३।५)

निःसन्देह कोई भी मनुष्य किसी भी कालमें क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता; क्योंकि सारा मनुष्यसमुदाय प्रकृतिजनित गुणोंद्वारा परवश हुआ कर्म करनेके लिये बाध्य किया जाता है।

परंतु प्रत्येक क्षण किये जानेवाले 'कर्म' का फल क्या होता है? कर्मकी दशा और दिशापर फलका आगमन होता है। संसारमें सब कर्म करते ही रहते हैं। सबको विभिन्न प्रकारके फल भी मिलते रहते हैं। कोई शान्तिमें रहता है, कोई अशान्तिमें रहता है, कोई तनाव एवं अवसादमें रहता है, कोई सुख-सम्पत्तिसे सम्पन्न होकर रहता है, तो कोई दुःख-दुर्गतिमें पड़ा रहता है। ऐसा कर्मकी दशा और दिशाकी भिन्नता और अनेकताके कारण होता है। क्या करना चाहिये? क्या नहीं करना चाहिये? इसका सही और सटीक 'आशय' मनमें नहीं बनने पाता है। संसारमें अधिकतम लोग या जनसंख्या तबाही और बर्बादीका ही जीवन व्यतीत करते रहते हैं—जीते हैं। इसका कारण है उनका 'अधर्म' वाला कर्म। जो नहीं करना चाहिये—वह अधर्म है और वे उसी ओर प्रवृत्त रहते हैं। जो करना चाहिये—वह धर्म है, उस धर्मकी ओर प्रवृत्ति कम-से-कम लोगोंमें रहती है। गायत्री मन्त्र—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (ऋग्वेद ३।६२।१०)

जो हमारी बुद्धियोंको सन्मार्गकी ओर प्रेरित करते हैं, उन सवितादेवताके वरण करनेयोग्य, विकारनाशक दिव्यता प्रदान करनेवाले तेजको हम धारण करते हैं।

'गायत्री मन्त्र' यजुर्वेदके अध्याय क्रमशः ३।३५, २२।९, ३०।२ में भी है। इसका तात्पर्य है—

सम्पूर्ण जगत्के जन्मदाता सविता (सूर्य) देवताकी उत्कृष्ट ज्योतिका हम ध्यान करते हैं, जो (तेज सभी सत्कर्मोंको सम्पादित करनेके लिये) हमारी बुद्धिको प्रेरित करता है।

सर्वप्रेरक, पापनाशक, वरण करनेयोग्य, देव (सत्-चित्-आनन्द)-स्वरूप, सवितादेवके तेजको हम धारण करते हैं, वे (उत्पादक—प्रेरक देव) हमारी बुद्धिको सन्मार्गपर चलने (श्रेष्ठ कर्म करने)-की प्रेरणा प्रदान करे।

हम उस सर्वप्रेरक सविताके तेजको धारण करते हैं जो हमारी (बुद्धि)-को सन्मार्गकी ओर प्रेरित करें।

सामवेदके मन्त्र (संख्या १४६२)-में अर्थ इस प्रकार है—जो हमारी बुद्धियोंको सन्मार्गकी ओर प्रेरित करते हैं, उन सवितादेवताके वरण करनेयोग्य तेजको हम धारण करते हैं।

गायत्री मन्त्र तो सभी वेदमें समान रूपसे है, परंतु उसके शाब्दिक अर्थमें भिन्नता है, फिर भी मूल आशय और अर्थ यही है कि सवितादेवता हमारी बुद्धिको श्रेष्ठ और सन्मार्गपर ले जायँ। आजकल जो सांसारिक जीवनमें विडम्बना, विषमता, दुर्भाग्य, अभाव, तनाव, अवसाद, अशान्ति, अराजकता और अन्याय बढ़ रहा है—उसके मूलमें 'बुद्धिका श्रेष्ठता और सन्मार्गसे हट जाना है और हट करके पतनकी ओर चला जाना है।' 'बुद्धि' अगर विषैली होगी तो संसारमें विष ही बढ़ेगा। आजकल 'बुद्धि' में अहंकार, लोभ, ईर्ष्या, क्रोध, द्वेष अधिकतम रूपमें बढ़ता जा रहा है। लोगोंका जीवन जहरीला होता जा रहा है। अन्याय, अत्याचार, हाहाकर, विध्वंस और विनाशका विषैला वातावरण बनता जा रहा है या बन गया है—भी।'

इस विषम, विषमय और विनाशकारी वातावरणसे बचनेके लिये 'गायत्री' का जप करना होगा, ताकि गायत्री-जप हमारी 'बुद्धि' में श्रेष्ठता और उत्कृष्टता लाये। हमारा कर्म श्रेष्ठ हो, तब हमारा व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामूहिक जीवन भी श्रेष्ठताकी ओर बढ़ेगा। गायत्री मन्त्र गुरुमुखसे प्राप्त करना चाहिये। उपनयन-संस्कारके समय गुरु शिष्यको गायत्री-मन्त्रका उपदेश देता है, अतः उपनीत होना गायत्री-जपकी पात्रता है।

'वेद'के साथ-साथ 'महाभारत'में भी भगवान् श्रीकृष्णने 'गायत्री-जप'की महिमाको इस प्रकार बतलाया है—

यो जपेत् पावनीं देवीं गायत्रीं वेदमातरम्।
न सीदेत् प्रतिगृह्णानः पृथिवीं च ससागराम्॥
ये चास्या दुःस्थिताः केचिद् ग्रहाः सूर्यादयो दिवि।
ते चास्य सौम्या जायन्ते शिवाः शुभकरास्तथा॥
पुनन्तीह पृथिव्यां च चीर्णवेदव्रता नराः।
चतुर्णामपि वेदानां सा हि राजन् गरीयसी॥
भूर्भुवः स्वरिति ब्रह्म यो वेदनिरतो द्विजः।
स्वदारनिरतो दान्तः स विद्वान् स च भूसुरः॥
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम्।
सावित्रीं जप कौन्तेय सर्वपापप्रणाशिनीम्॥

जो ब्राह्मण सबको पवित्र बनानेवाली वेद-माता गायत्रीदेवीका जप करता है, वह समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका दान लेनेपर भी प्रतिग्रहके दोषसे दुखी नहीं होता।

तथा सूर्य आदि ग्रह, जो उसके लिये अशुभ स्थानपर रहकर अनिष्टकारक होते हैं, वे भी गायत्री जपके प्रभावसे शान्त, शुभ और कल्याणकारी फल देनेवाले हो जाते हैं।

वैदिक व्रतोंका आचरण करनेवाले पुरुष पृथ्वीपर दूसरोंको पवित्र करनेवाले होते हैं। राजन्! चारों वेदोंमें वह गायत्री श्रेष्ठ है।

जो ब्राह्मण '**भूर्भुवः स्वः**' इन व्याहृतियोंके साथ गायत्रीका जप करता है, वेदके स्वाध्यायमें संलग्न रहता है और अपनी ही स्त्रीसे प्रेम करता है, वही जितेन्द्रिय, वही विद्वान् और वही भूमण्डलका देवता है।

प्रतिदिन एक हजार गायत्री-मन्त्रका जप करना उत्तम है, सौ मन्त्रका जप करना मध्यम और दस मन्त्रका जप करना कनिष्ठ माना गया है। कुन्तीनन्दन! गायत्री सब पापोंको नष्ट करनेवाली है, इसलिये तुम सदा उसका जप करते रहो।*

इस प्रकार 'महाभारत' में वर्णित श्लोकोंमें कहीं 'गायत्री' तो कहीं 'सावित्री' शब्द आया है। यहाँ 'गायत्री' और 'सावित्री' एक ही देवीके दो नाम हैं। दोनोंके ही देवता 'सविता' ही हैं। इसी प्रकार 'गीता' में भी भगवान् श्रीकृष्णने 'गायत्री' को अपना स्वरूप ही बतलाया है—'**गायत्री छन्दसामहम्**' अर्थात् 'छन्दोंमें मैं गायत्री हूँ।' वेदमें गायत्री छन्द आया है, जिसमें अनेक मन्त्र वर्णित हैं। यहाँ भगवान्‌ने छन्दोंमें गायत्री मैं हूँ—ऐसा कहा है। न कि मन्त्रोंमें गायत्री हूँ। इस प्रकार गायत्रीके जपसे आज हम संसारमें श्रेष्ठता और सन्मार्गपर तो जा ही सकते हैं। विध्वंस और विनाशसे भी बच सकते हैं।

* सनातन-धर्मकी परम्परामें गायत्री-मन्त्रका जप यज्ञोपवीत धारण करनेवाले द्विज ही करते हैं।—सम्पादक

सुन्दरकाण्डमें सामाजिक मर्यादाके सूत्र

(श्रीमती आशाजी मेहरोत्रा)

सन्तोंने जहाँ बालकाण्डके आदि और उत्तरकाण्डके अन्तके मर्मको जानना ही जीवनका आनन्द माना है, वहीं सुन्दरकाण्ड विलक्षणता और विचित्रतामें अत्यन्त ही अनोखा एवं अनूठा है। श्रीरामदूत हनुमान्‌जीका सुन्दर स्वरूप और सुन्दर कार्य ही इस काण्डका सौन्दर्य है। श्रीहनुमान्‌जीकी महिमा और गरिमा अनन्त, अज्ञेय और अथाह है। जैसे उनके आराध्य प्रभु श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम हैं, वैसे ही वे भी सेवक धर्मकी मर्यादाके श्रेष्ठतम उदाहरण हैं।

सुन्दरकाण्डका अध्ययन करनेपर हम पाते हैं कि इसमें सामाजिक जीवनकी मर्यादाओंका भण्डार भरा हुआ है। इन मर्यादाओंको अपने जीवनमें उतार लेनेपर साधारण मनुष्य भी देवत्वको प्राप्त करनेमें सफल हो सकता है। 'मर्यादा' शब्द अपने-आपमें अर्थगाम्भीर्य लिये हुए है। मर्यादाके अनेक अर्थ हैं, परंतु सामाजिक संदर्भमें मर्यादाका तात्पर्य नियम, सीमा, धर्म, सदाचार तथा गौरवसे है।

सुन्दरकाण्डकी भूमिका किष्किन्धाकाण्डके अन्तमें मिलती है। सीतामाताकी खोजमें चिन्तातुर वानरवीर समुद्रतटपर निराश-हताश बैठे हैं तथा कुछ दूरीपर हनुमान्‌जी शान्तचित्त प्रभु श्रीरामका स्मरण कर रहे होते हैं। जामवन्तजी हनुमान्‌जीको देखकर कहते हैं—*'का चुप साधि रहेहु बलवाना।'*

पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥
रामकाज लगि तव अवतारा। … … … …॥

यह प्रसंग शिक्षा देता है कि संकटके समय मौन रहकर प्रभु-स्मरण किया जाय तो बुद्धिके जाग्रत् होनेके साथ-ही-साथ अपनी शक्तियोंका भान भी होता है। हनुमान्‌जी प्रभुका स्मरणकर कार्यके लिये तत्पर होते हैं—

चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा॥

इससे निष्कर्ष निकलता है कि कार्य प्रारम्भ करते समय हर्ष तथा उत्साहके साथ-ही-साथ प्रभुका स्मरण भी आवश्यक होता है। हनुमान्‌जीका प्रथम मिलन मैनाकसे होता है। वह उन्हें विश्रामहेतु निमन्त्रण देता है। इसपर हनुमान्‌जी कहते हैं—

'राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥'

कार्य करते समय स्वयंमें भी विश्रामकी इच्छा होती है और आस-पासवाले भी आमन्त्रण देते हैं। हनुमान्‌जीका व्यवहार शिक्षा देता है कि कार्य पूरा होनेके पूर्व विश्राम उचित नहीं है। यद्यपि हनुमान्‌जी मैनाकका निमन्त्रण स्वीकार तो नहीं करते, लेकिन वे उसका स्पर्शकर उसे सम्मान अवश्य देते हैं। मार्गमें आनेवाले और साथ देनेवालोंका सम्मान करना ही श्रेयस्कर नीति है।

कार्यके बीचमें बाधाएँ भी आती हैं। हनुमान्‌जीका मार्ग रोककर सुरसा कहती है।

आजु सुरन्ह मोहि दीन्हि अहारा।

यह सुनकर पवनतनय कहते हैं—

राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं॥
तब तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई॥

हनुमान्‌जीके बारम्बार समझानेपर भी जब सुरसा नहीं मानती और उन्हें खानेकी जिदपर अड़ी रहती है, तब पवनतनय अपनी कुशाग्र बुद्धिसे उसके मुखमें प्रवेशकर अतिशीघ्र बाहर निकल आते हैं। इससे यह शिक्षा मिलती है कि बाधा आनेपर अपने बुद्धि-चातुर्यका प्रयोग करना चाहिये। जो सुरसा पवनपुत्रका भक्षण करने आयी थी, वही उन्हें आशीर्वाद देकर वापस जाती है।

हनुमान्‌जीके आगे बढ़नेपर एक और बाधा उपस्थित होती है। समुद्र-निवासिनी निसचरी, जो आकाशमार्गसे जाते हुए पक्षियोंकी छाया पकड़कर उन्हें अपना निवाला बनाती थी, मिली। सचेत हनुमान्‌जी **'शठे शाठ्यं समाचरेत्'** नीतिका अनुसरण करते हुए उसका वध कर देते हैं। यहाँ यह शिक्षा मिलती है कि बाधाएँ दृश्य एवं अदृश्य दोनों प्रकारकी होती हैं, अतः सदैव सचेत रहना चाहिये।

हनुमान्‌जी परम बलशाली होते हुए भी लंकामें प्रवेश करते समय मच्छरके समान रूप धारण करते हैं; क्योंकि नीति यही है कि कोई कितना भी बलशाली क्यों न हो, उसे शत्रुक्षेत्रमें अपने मूलरूपमें नहीं जाना चाहिये।

लंकिनीने हनुमान्‌जीके मार्गमें व्यवधान उत्पन्न किया, तब पवनतनयने उसपर मुष्टिकाका प्रहार किया। फलस्वरूप वह खूनकी उलटी करती हुई पृथ्वीपर लुढ़क पड़ी। इससे उसे हनुमान्‌जीकी शक्तिका भान हुआ और वह बोली—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

हनुमान्‌जी लंकामें प्रवेश करते समय भी प्रभुका स्मरण करना नहीं भूलते।

विभीषणसे भेंट करनेके पूर्व पवनतनय विचार करते हैं कि ***साधु ते होइ न कारज हानी।*** विभीषण और हनुमान्‌जी आपसमें चर्चा करते हैं, उस समय विभीषणजी कहते हैं ***जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी।*** यह सत्य है कि समाजमें सज्जन पुरुष समाजकी मर्यादाका ध्यान रखते हुए उसी प्रकार जीवन व्यतीत करते हैं, जिस प्रकार दाँतोंके बीच जीभ।

हनुमान्‌जी विभीषणजीसे सीताजीका स्थान पूछकर अशोक-वनमें पहुँचते हैं। इसके पूर्व हनुमान्‌जी एवं सीताजी एक-दूसरेसे अपरिचित थे। समानधर्मा तथा समान भावधारासे सम्पन्न एक ही इष्टके प्रति श्रद्धावनत सहजमें ही आपसमें स्नेहपूर्ण हो जाते हैं। इसी कारण सीताजीका हृदय स्नेहपूर्ण हो जाता है—***हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी।*** यह वास्तवमें समाजकी दृष्टिसे विशिष्ट ढंगकी मर्यादा है। अशोक-वाटिकामें वे माता जानकीजीका मनोबल बढ़ाते हुए कहते हैं—

निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु॥
जौं रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंबु रघुराई॥
राम बान रबि उएँ जानकी। तम बरूथ कहँ जातुधान की॥

साथ-ही-साथ वे अपने सेवक-धर्मकी मर्यादाका वर्णन भी करते हैं।

अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा॥
निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं॥

इस प्रकार एक ओर प्रभु श्रीरामके बलका स्मरण कराकर सीताजीको सान्त्वना देते हैं, दूसरी ओर सेवक होनेके नाते अपनी विवशता भी जताते हैं; क्योंकि यही मर्यादा है कि सेवक अपने स्वामीकी आज्ञाका अक्षरशः पालन करे।

रावणके यह पूछनेपर कि तू कौन है और किसके बलपर तूने अशोकवाटिका उजाड़ दी?

हनुमान्‌जी मर्यादानुसार पहले अपने स्वामीका परिचय देते हुए कहते हैं—

सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥
धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता॥
हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा। तेहि समेत नृप दल मद गंजा॥
खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली॥
जाके बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि॥

इसके पश्चात् रावणको लज्जित करनेके लिये कहते हैं—

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई॥

आगे रावणको सीख देते हुए विनम्रतापूर्वक कहते हैं—

जाकें डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहें जानकी दीजै॥

अपने स्वामीकी क्षमाशीलताके बारेमें कहते हैं—

प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि॥

अन्तमें रावणको सलाह देते हुए कहते हैं—

मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥

सामाजिक मर्यादाका पालन ज्येष्ठ और लघु भ्रातामें किस प्रकार होता है, इसको सुन्दरकाण्डमें अति सुन्दर ढंगसे तुलसीदासजीने निरूपित किया है। विभीषणजी अत्यन्त आदरभावसे अपना मस्तक झुकाकर शालीनतापूर्वक अपने ज्येष्ठ भ्रातासे प्रार्थना करते हैं।

नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिअ दूता॥

लंकादहनके पश्चात् श्रीरामके पास पहुँचनेके पश्चात् अंजनीनन्दन लंकामें किये गये कार्योंके बारेमें एक शब्द भी नहीं बोलते हैं, सब कुछ जामवन्तजी ही श्रीरामसे कहते हैं। यही सेवककी मर्यादा है।

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी॥

पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए॥

सीता माँकी खोज करनेके पश्चात् उनकी निरभिमानिता वास्तवमें अतुलनीय है। बजरंगबलीके उद्‌गार हैं—

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

इसीलिये सीताकी खोज होनेके पश्चात् हनुमान्‌के सुयशका बखान करते-करते प्रभु श्रीराम कहते हैं—

सुन कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं। देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥

जब भगवान् श्रीरामने हनुमान्‌जीसे कहा—'मैं क्या प्रतिउपकार करूँ, मेरा मन सन्मुख नहीं हो सकता। मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकता।' तो हनुमान्‌जी व्याकुल होकर प्रभुसे कहते हैं—'हे भगवन्! मेरी रक्षा कीजिये।' हनुमान्‌जीको अभिमानरूपी शत्रुका बड़ा भय है। इस प्रशंसासे कहीं अहंकार न हो जाय, इसलिये प्रभुके चरणोंमें गिरते हैं और कहते हैं—

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

पवनतनयके द्वारा लंका-दहनके पश्चात् मन्दोदरी मर्यादामें रहकर अपने पतिसे हाथ जोड़कर निवेदन करती है—

जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आएँ पुर कवन भलाई॥
कंत करष हरि सन परिहरहू। मोर कहा अति हित हियँ धरहू॥
समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी॥
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई॥
तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें॥

ठकुरसुहातीके बारेमें एक नीतिवाक्य है—

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥

जब रामकी सेना समुद्रके उस पार आ जाती है, तब रावणको मन्त्रणा देनेहेतु विभीषणजी आते हैं। उनका मर्यादित व्यवहार द्रष्टव्य है—

पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन॥
जौ कृपाल पूँछिहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहउँ हित ताता॥
जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं॥

विभीषणजी अपनी मर्यादामें रहते हुए ही अपने भ्राता लंकेशको परामर्श देते हैं—

बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस॥

समाजमें शुद्ध विचारोंका विशेष महत्त्व है। जहाँ शुद्ध विचार अर्थात् सुमतिका साम्राज्य होता है, वहाँ अनेक प्रकारके सुख निवास करते हैं, इसके विपरीत जहाँ कुमतिका प्रभाव रहता है, वहाँ अनेक विपदाएँ रहती हैं।

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥

रावणके द्वारा चरण-प्रहार करनेपर भी अनुज विभीषणने उसके चरण ही पकड़े; क्योंकि सन्तोंकी यही महिमा है कि वे बुरा करनेवालोंकी भी भलाई करते हैं।

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥

विभीषणजी भी रावणका भला चाहते हैं, वे लंकाका परित्याग करनेके पूर्व दशाननसे कहते हैं।

तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा। रामु भजें हित नाथ तुम्हारा॥
रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि॥

मर्यादाका इससे उत्तम उदाहरण क्या हो सकता है कि मनुष्य चरण-प्रहार करनेवालेके प्रति भी शुभ विचार रखे।

सामाजिक मर्यादा है कि शरणागतको अभयदान देना चाहिये तथा उसे किसी भी प्रकारका कष्ट या अपमानका अनुभव नहीं होना चाहिये। यही कारण है कि जब विभीषणजी श्रीरामके शरणमें आते हैं। तब प्रभु श्रीराम सुग्रीवादिसे कहते हैं। ***'मम पन सरनागत भयहारी।'*** भगवान् श्रीरामके शरणागतके बारेमें विचार द्रष्टव्य हैं—

सरनागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पावँर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥
कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा॥
जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं॥

दुष्टोंकी संगतिके बारेमें प्रभु श्रीराम विभीषणकी असहजताको समझते हुए कहते हैं—

कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा॥

खल मंडली बसहु दिनु राती। सखा धरम निबहइ केहि भाँती॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती॥

विभीषणजीने प्रभुके भावको समझकर एक नीति-वाक्य कहा—

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥

साथ-ही-साथ कहते हैं—श्रीरघुनाथजी! आपके चरणोंका दर्शनकर मैं कुशलसे हूँ, जो आपने अपना सेवक जानकर मुझपर दया की है। यह है कृतज्ञताका भाव।

सर्वज्ञ होते हुए भी श्रीरामजी दूसरोंको पूर्ण सम्मान देते हैं, वे अपने सहयोगियोंसे परामर्श लेते हुए कहते हैं—

सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा॥
संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती॥

तब विभीषणजी प्रभु श्रीरामकी प्रशंसा करते हुए एक नीतिपूर्ण वचन कहते हैं—

कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिअ सागर सन जाई॥
प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि॥

समाजमें आलसी लोग भी रहते हैं, जो कार्य करनेसे जी चुराते हैं। लक्ष्मणजीके द्वारा गोस्वामीजीने सहज ढंगसे यह बात कहलवा दी—***दैव दैव आलसी पुकारा॥***

प्रभु श्रीराम सुन्दरकाण्डमें मोहके बारेमें कहते हैं कि जो मोहका त्याग कर देता है, वही सज्जन है; क्योंकि मोहका त्याग सर्वश्रेष्ठ है। गोस्वामीजीने लोभरूपी मानसिक विकारको निरूपित करनेके साथ-साथ श्रीरामके मूल भावको भी निम्नलिखित चौपाइयोंमें अभिव्यक्त किया है—

जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥

सुन्दरकाण्डमें हम पाते हैं कि हर एकने मर्यादाका निर्वाह किया है। शुक नामक गुप्तचरने भी रावणको उत्तम परामर्श देते हुए कहा—

कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समुझहु छाड़ि प्रकृति अभिमानी॥
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा॥

शुककी स्वामिभक्ति भी सराहनीय है, वह अपने स्वामीका अशुभ नहीं चाहता है, अत: उसने स्पष्ट कहा—

अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ॥
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही। उर अपराध न एकउ धरिही॥
जनकसुता रघुनाथहि दीजे। एतना कहा मोर प्रभु कीजे॥

सामाजिक दृष्टिसे किसी भी कार्यको पूर्ण करने हेतु विनम्रताके क्रमका निर्वाह करना चाहिये। सुखद परिणाम न प्राप्त होनेपर ही उग्र होना चाहिये। जड़ समुद्रके न माननेपर प्रभु श्रीरामको अपना रौद्र रूप दिखाना पड़ा, जो मर्यादाके सर्वथा अनुकूल था।

बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति॥
लछिमन बान सरासन आनू। सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू॥

प्रभु श्रीरामने कुछ नीतिके वाक्य भी कहे—

सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीती॥
ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा॥

काकभुशुण्डिजी भी गरुड़जीसे एक नीतिकी बात कहते हैं—

काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच॥

अन्तमें श्रीरामके असीम प्रतापको स्मरणकर सागर विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर कहता है—

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे॥
गगन समीर अनल जल धरनी। इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी॥
प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही॥

प्रभु श्रीराम सागरकी धृष्टताकी अनदेखीकर उसे क्षमा कर देते हैं। यह सामाजिक मर्यादा ही तो है कि जब कोई अहंका त्यागकर क्षमा माँग ले, तो उसके प्रति विनम्रताका व्यवहार ही करना चाहिये। संस्कृतकी एक सूक्ति है '**धर्मो रक्षति रक्षित:।**' धर्म क्या है? मर्यादित आचरण ही धर्म है। मर्यादाका हननकर्ता कालान्तरमें स्वयं तो दुर्गतिको प्राप्त होता ही है, स्वजनोंके विनाशका कारण भी बनता है। राम मर्यादारक्षक हैं, तो रावण मर्यादाभंजक। मर्यादा सृष्टिकी स्थितिका बीजमन्त्र है और यही रामकथाका केन्द्रीय भाव है। सुन्दरकाण्डमें इसका निरूपण विशिष्ट रूपसे दृष्टिगत होता है।

तीर्थ-दर्शन—

रामेश्वरम्‌का विभीषण-मन्दिर

(श्रीभानदेवजी)

एक बार मैं अकेले ही दक्षिण भारतकी यात्रापर था। यात्राके क्रमानुसार रामेश्वरम् पहुँच गया। रामेश्वरम्‌में पाँच दिनोंतक रहा। रामेश्वरम्‌से मैं धनुष्कोटि जाना चाहता था, परंतु मुझे बताया गया कि धनुष्कोटि अब नष्ट हो गया है। एक बार समुद्रमें तूफान आया और समुद्रकी लहरोंमें सब बह गया। धनुष्कोटि जानेका रास्ता भी नष्ट हो गया है, इसलिये अब धनुष्कोटिमें कुछ भी दर्शनीय नहीं है और रेलगाड़ी, बस या अन्य कोई सवारी धनुष्कोटितक नहीं जाती, जानेकी सम्भावना ही नहीं है।

यह सब सुननेके बावजूद धनुष्कोटिकी दिशामें कुछ दर्शनीय है या नहीं और बस उस दिशामें जाती है या नहीं, इसके बारेमें मैंने जाँच की। मुझे पता चला कि बस धनुष्कोटितक तो नहीं, परंतु जहाँतक रास्ता है वहाँतक जाती है। उस स्थानपर थोड़े मछुआरे झोंपड़ी बनाकर रहते हैं। उस स्थानतक जानेवाली बस रास्तेमें थोड़ा मोड़ लेकर समुद्रके बीच स्थित एक स्थान 'विभीषण-मन्दिर' तक भी जाती है। धनुष्कोटि दूरसे एवं विभीषण-मन्दिर बिलकुल नजदीकसे देखना सम्भव होगा—यह सोचकर मैंने इन दोनों स्थानोंपर जाना तय किया।

प्रात: दस बजे बसमें सवार होकर मैं निकल पड़ा। दस किलोमीटरतक तो बस सामान्य रास्तेपर चलती रही। तारकोलकी सड़क थी। दस किलोमीटरके पश्चात् रास्तेका स्वरूप बदल गया। अब बसने समुद्रमें प्रवेश किया। समुद्रके बीच मेंड़ बाँधकर रास्ता बनाया गया था। जैसे धानके खेतोंके बीच मेंड़ होती है और मेंड़पर पगडण्डी होती है, जहाँसे लोग आवागमन करते हैं। यहाँ समुद्रके बीच चौड़ी परंतु बिलकुल नीची मेंड़ है, जिसपर रास्ता है और उसी रास्तेपर बस चल रही है। अत्यन्त नया और आह्लादक अनुभव है।

समुद्रके बीच नावसे तो अनेक बार जाना हुआ है, परन्तु समुद्रके बीच बसमें सवार होकर जानेका यह पहला अनुभव है।

रामेश्वरम्‌का समुद्र बिलकुल छिछला एवं शान्त है। कन्याकुमारी-जैसी ऊँची उछलनेवाली लहरोंका समुद्र यहाँ नहीं है। फिर भी समुद्र आखिर समुद्र होता है। बस आगे बढ़ रही है और हम समुद्रमें आगे-ही-आगे घुसते जा रहे हैं। इस प्रकार दो-तीन किलोमीटर भीतर जानेके पश्चात् चारों ओर समुद्र-ही-समुद्र है। आगे-पीछे, दाहिने-बायें—सर्वत्र समुद्र है। अब हम समुद्रके बीचोबीच पहुँच गये हैं। समुद्रके बीच एक तंग और दो-एक फुट ऊँची सड़कपरसे हमारी बस गुजर रही है।

इस प्रकार और दो किलोमीटर आगे बढ़नेके पश्चात् समुद्रमें एक स्थान आ पहुँचा। बस खड़ी रही। कण्डक्टरने सभी यात्रियोंको सुनाते हुए कहा—'विभीषण-मन्दिर।'

हम सब यात्री बससे उतर गये। पाँच हजार वर्गमीटरका बड़ा भूखण्ड है यह, जितनी खुली जगह है, वहाँ चारों ओर समुद्र है। समुद्रके बीच इतनी-सी जमीन है। सर्वत्र रेत-ही-रेत है। जमीनकी सतह समुद्रके पानीकी सतहसे बहुत ऊँची नहीं है। दोनोंके बीच केवल एक-दो फुटका अन्तर होगा। यहाँ रेतमें बबूलके पेड़ हैं। बबूल-जैसी कुछ वनस्पतियाँ इस प्रकार समुद्रके बीच भी उगती हैं। इस बबूलको विलायती बबूल या पगला बबूल भी कहते हैं। कच्छ (गुजरात)-के रेगिस्तानमें एवं समुद्रके तटपर यह बड़ी तादादमें है।

इस खुली जमीनके बीच पच्चीस फुटका एक ऊँचा टीला है। उसपर एक मन्दिर है। इस मन्दिरतक पहुँचनेके लिये पत्थरसे बनी हुई सीढ़ियाँ हैं। इसे ही विभीषण-मन्दिर कहा जाता है।

कण्डक्टरने हमें सूचित किया कि बस यहाँ केवल आधा घण्टा ही रुकेगी। आधे घण्टेमें सभी वापस लौटकर बसमें सवार हो जायँ।

हम सब यात्री सीढ़ियाँ चढ़कर मन्दिरमें गये। पत्थरसे बना छोटा-सा साधारण मन्दिर है। यह भगवान्

रामजीका मन्दिर है। फिर भी इस स्थानको विभीषण-मन्दिर कहा जाता है; क्योंकि प्रचलित मान्यताके अनुसार रावणसे तिरस्कृत विभीषणजी प्रथम बार भगवान् रामसे यहीं मिले थे, उनके द्वारा शरण स्वीकार करनेकी वह घटना यहीं घटित हुई थी, इसलिये इसे विभीषण-मन्दिर कहा जाता है। मन्दिरके पुजारीजी एक रामानन्दी साधु हैं। उन्होंने सभी यात्रियोंको भगवान्‌के दर्शन करवाये, प्रसाद दिया और संक्षेपमें इस स्थानका माहात्म्य समझाया। मन्दिर तो बिलकुल छोटा है। यहाँ निवास करनेके लिये अन्य कोई स्थान दिखायी नहीं देता, तो फिर पुजारी साधु कहाँ निवास करते होंगे?

सभी यात्रियोंके चले जानेके पश्चात् मैं और पुजारीजी ही थे, तब मैंने उनसे उनके निवासके बारेमें पूछा। उन्होंने बबूलके झुंडके बीच दिखायी देनेवाली एक छोटी सूनी-सी कुटियाकी ओर संकेत किया। वह एकान्त कुटिया उनका निवासस्थान है। समुन्दरके बीच ऐसे बिलकुल निर्जन एकान्त स्थानपर यह साधु अकेले रहते हैं। यदि साधनपरायण एवं भगवत्परायण आत्मा नहीं है, तो यहाँ कभी नहीं रह सकती। इस एकान्त स्थानका वातावरण मुझे छू गया। मनमें एक विचार कौंध उठा—यहाँ यदि एक दिन रहा जाय तो? और मैंने तुरन्त ही साधु महाराजसे पूछा—'आप यदि अनुमति दें तो यहाँ एक दिन रुकनेकी इच्छा है। क्या यह सम्भव है?'

साधु महाराजने कहा—'आनन्दसे रहिये। यहाँका भोजन यहींके अनुरूप है। क्या आपको स्वीकार है?'

मैंने उन्हें आश्वासन दिया—'आप निश्चिन्त रहें।'

सभी यात्री बसमें सवार हो गये थे। बसचालक अपने स्थानपर बैठ गये थे। कण्डक्टर बसके दरवाजेपर खड़े होकर मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मुझे बसकी ओर आते देखकर उन्होंने पुकारकर कहा—'महाराज! जल्दी आइये। बस जा रही है।' मैंने बसके पास पहुँचकर कण्डक्टरसे कहा—'मैं एक दिनके लिये यहीं रुक जाता हूँ। कल इसी बसमें आपके साथ जाऊँगा।'

कण्डक्टर बेचारा हक्का-बक्का रह गया। मैं बसमें जाकर अपना थैला ले आया। बसमें सवार यात्री मुझे कौतूहल एवं दिलचस्पीसे निहार रहे थे। कण्डक्टरको मुसकुराकर विदाई देकर मैं मन्दिरकी ओर चल दिया। बस अपने पथपर चल दी। अब एक दिनके लिए मुझे यहाँ समुन्दरके बीच रहना था।

पुजारीजी मन्दिरकी सीढ़ियाँ उतर रहे थे। मैं बबूलके झुण्डके बीच स्थित उनकी कुटियापर गया। एक बिलकुल छोटा-सा कमरा था। हम दोनों बाहर समुद्रतटपर बैठ गये। पुजारीजीने कहा—'यहाँ पानी भी बाहरसे लाना पड़ता है। चाय, दूध, सब्जी, फल—इनमेंसे कुछ नहीं मिलता। केवल दाल-रोटी मिल जाती है।'

मैंने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—'अरे! यहाँ भगवान् श्रीराम शरणागतवत्सलके रूपमें विराजमान हैं। यह समुन्दर है। यह आकाश है। दाल-रोटी मिल जाती है। और क्या चाहिये?' वे मेरे बारेमें निश्चिन्त हो गये। उन्हें भरोसा हो गया कि मेरा ध्यान बहुत सुख-सुविधाकी ओर नहीं है। वैसे ऐसे स्थानपर एक रात भी रहना बहुत बड़ी बात है।

दोपहरको हमने मिलकर भोजन बनाया। मन्दिरमें जाकर भगवान्‌को नैवेद्य समर्पित किया। नैवेद्यमें केवल दाल और रोटी थी। जैसा देहको वैसा देवताको।

दोपहरसे शामतक हमने सत्संग किया। रात्रिभोजन, आरती, नित्यपाठके पश्चात् भी देरतक हम सत्संग करते हुए बैठे थे।

साधु महाराज संस्कृतके अच्छे जानकार हैं। सामान्य रूपसे रामानन्दी साधु 'रामचरितमानस'को अपने सम्प्रदायका एवं इसीलिये अपना भी सिरमौर ग्रन्थ मानते हैं। परंतु हमारे साधु महाराजको रामचरितमानससे भी वाल्मीकि रामायण अधिक प्रिय है। वाल्मीकि रामायणके अनेक आवर्तन उन्होंने किये हैं और अब भी वे रामायणका नित्यपाठ करते हैं।

अयोध्यामें 'वाल्मीकि-भवन' नामक रामानन्दी सम्प्रदायकी एक संस्था है। वहाँ विशाल वाल्मीकि भवनमें संगमरमरकी दीवारोंपर समग्र वाल्मीकि रामायण नक्काशी करके लिखा गया है। इस संस्थाकी परम्परामें वाल्मीकि रामायणकी विशेष महिमा है। हमारे साधुबाबा वाल्मीकि रामायणको अपना प्रधान अध्यात्मग्रन्थ मानते

हैं। उन्हें यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रिय है, इसलिये उसका आवर्तन करना उनकी प्रिय साधना है।

हमारे साधुबाबाको वैसे तो समग्र वाल्मीकि रामायण प्रिय है, परंतु उसका एक प्रसंग उन्हें अतिप्रिय है और इस प्रसंगकी प्रियता ही उन्हें यहाँ समुन्दरके बीच खींच लायी है। उन्हें विभीषणकी शरणागतिका प्रसंग अतिप्रिय है। वाल्मीकि रामायणके युद्धकांडमें चौदहवेंसे उन्नीसवें अध्यायतक यानी इन छः अध्यायोंमें इस समग्र प्रसंगका अति सुन्दर वर्णन है। विभीषण रावणको समझाता है कि सीताजीको आदरपूर्वक रामजीको वापस दे दीजिये और भगवान् रामकी शरण स्वीकार कर लीजिये। विभीषणकी यह सलाह रावणको अपमानजनक एवं कड़वी लगती है। रावण विभीषणका तिरस्कार करता है, अपमानित करता है एवं उसका त्याग करता है। भक्त विभीषण भगवान् श्रीरामकी शरणमें जाना चाहता है। आकाशमार्गसे विभीषणजी रामजीके पास आते हैं एवं अपनेको स्वीकार करनेकी प्रार्थना करते हैं। विभीषण श्रीरामके दुश्मन रावणके सहोदर हैं, राक्षस हैं, युद्धका समय है— ऐसी परिस्थितिमें विभीषणको स्वीकार करें या न करें? सुग्रीव, अंगद एवं लक्ष्मणजी, जामवन्तजी इत्यादि सभी श्रीरामको विभीषणको स्वीकार नहीं करनेका सुझाव देते हैं। उस समय भगवान् श्रीराम अपने एक संकल्पके बारेमें कहते हैं—भगवान्का यह संकल्प अध्यात्म जगत्का एक अत्यन्त मूल्यवान् सत्य है। अध्यात्मपथके यात्रीके लिये यह वचन ध्यानमन्त्रके समान है।

भगवान् श्रीराम कहते हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड १८। ३३)

'जो व्यक्ति केवल एक बार शरणमें आकर 'मैं आपका हूँ' कहकर मेरे पास सुरक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे समस्त भूतोंसे मैं अभय प्रदान करता हूँ। यह मेरा व्रत है।'

विभीषण राक्षस है, मेरे दुश्मन रावणका सहोदर है, युद्धका समय है, परंतु शरणमें आया है, इसलिये अन्य सभी विषयोंके बारेमें नहीं सोचकर केवल अपनी शरणागत-सुरक्षाके संकल्पके बारेमें सोचकर ही भगवान् श्रीराम उसको स्वीकार करते हैं। उसे अपना अन्तरंग भक्त बना देते हैं एवं लंकाका राज्य भी दे देते हैं।

भगवान् श्रीरामकी शरणागतवत्सलतासे हमारे साधु महाराज अति प्रभावित हैं। भगवान् श्रीरामकी शरणागत-वत्सलता ही इन साधुके जीवनका और उनकी अध्यात्म-साधनाका आधार है। इसीलिये उन्हें यह प्रसंग अत्यन्त प्रिय है और उसमें भी भगवान् श्रीरामके ये वचन—**'सकृदेव प्रपन्नाय०'** तो उनके जीवनका, उनके अध्यात्म-पथका महामन्त्र है, प्रधान आधार है। वे सारा दिन, इस श्लोकको महामन्त्र मानकर उसका पाठ करते रहते हैं।

रामेश्वरम्के समीप समुद्रके बीच ऐसा कोई स्थान है, ऐसा वे नहीं जानते थे। एक बार वे अयोध्यासे भारतकी तीर्थयात्रापर निकले। इस यात्राके क्रममें वे रामेश्वरम् पहुँचे। रामेश्वरम् पहुँचकर उन्हें पता चला कि जिस स्थानपर भक्तराज विभीषण भगवान् श्रीरामकी शरणमें आये थे, वह स्थान यहाँ समुन्दरके बीचमें स्थित है, वहाँ एक मन्दिर है और वह स्थान यहाँका एक तीर्थस्थान माना जाता है। वस्तुतः इस स्थानको शरणागति-तीर्थ माना जाना चाहिये। हमारे साधु महाराजको इस शरणागतितीर्थकी जानकारी प्राप्त होते ही वे यहाँ आनेके लिये अधीर हो गये।

यहाँ आकर उन्होंने देखा कि समुद्रके बीच रमणीय तीर्थ है। भगवान् रामका मन्दिर है, परंतु यहाँ कोई पुजारी नहीं है। यहाँ मनुष्यकी आबादी नहीं है। साधुबाबाके चित्तमें जिस प्रकारका भाव विद्यमान है, उसके अनुरूप इस स्थानपर आकर वे भावविभोर हो गये। इस स्थानमें पूजा नहीं की जाती, भगवान् रामका श्रीविग्रह अपूजित है, यह जानकर उन्हें बहुत दुःख हुआ। उन्होंने यहींपर पड़ाव डाल दिया, वापस लौटकर नहीं गये। मन्दिरमें सेवा-पूजाका कार्य उन्होंने शुरू किया। उन्होंने अपने इस प्रिय स्थानपर आसन जमा लिया।

यहाँ निवास करना अत्यन्त कठिन है। जहाँ पीनेका पानी भी प्राप्त न हो, ऐसे बिलकुल निर्जन स्थानपर समुन्दरके बीच निरन्तर निवास करना आसान नहीं है। परंतु भक्तिमें ऐसा दैवत् है कि उसके प्रभावसे कठिन भी सरल हो जाता है।

आरोग्य-चर्चा—

मोटापा (वजन) कैसे घटायें ?

(योगाचार्य डॉ० श्रीओमप्रकाशजी 'आनन्द')

जब शरीरमें अधिक चर्बी, अधिक मल एवं अधिक पानीका संचय हो जाता है, तो मोटापा असाधारण रूपसे बढ़ जाता है। शरीर बेडौल हो जाता है। वास्तवमें यह कोई रोग नहीं है, अपितु यह बहुत-सी बीमारियोंका भविष्यमें कारण बन जाता है, जैसे—मधुमेह, जीर्ण कब्ज, गैस, हृदय रोग, रक्तचापमें वृद्धि, अल्सर, लकवा, चर्मरोग, अनिद्रा, गठिया, दमा, बाँझपन, नपुंसकता, घुटनोंमें दर्द आदि। मोटी स्त्रियोंकी बच्चेदानीमें चर्बीके जमा हो जानेसे प्राय: वे वन्ध्या हो जाती हैं। मोटापेके कारण शरीरको ढोना मुश्किल हो जाता है। स्फूर्ति-उमंग समाप्त हो जाती है। मस्तिष्क निष्क्रिय होने लगता है, धीरे-धीरे याद्दाश्त कमजोर होने लगती है, साहस कम होने लगता है, किसी भी कार्यको करनेकी क्षमता कम हो जाती है। मोटे व्यक्तियोंको जब कोई रोग हो जाता है, तो बिना मोटापा घटाये छुटकारा नहीं मिलता है।

कारण—अनियन्त्रित दिनचर्या, अधिक भोजन करना, श्रम और व्यायामका अभाव, अधिक चिकनाईयुक्त तथा चटपटा मसालेदार आहार, मैदेसे बनी खाद्य वस्तुएँ, मिठाई, नमकीन, अचार आदिके सेवनसे पाचन-क्रियाका बिगड़ना, थायराइड ग्लैण्डका असन्तुलन, स्टेरॉयड दवाओंका प्रयोग, मौसमके विपरीत आहारका ग्रहण करना तथा रात्रिके समयका पौष्टिक भोजन लेना मोटापा बढ़नेके प्रमुख कारण हैं। यह वंशानुगत (हेरिडिटी) भी होता है।

उपचार—वजनको नियन्त्रित करनेके लिये दृढ़संकल्पित होना आवश्यक है। अपने भोजनमें सुधार करके आहारकी एक आदर्श तालिका बनाकर भोजन करना चाहिये। हाँ! मोटापेको धीरे-धीरे घटाना चाहिये। तेजीसे मोटापा घटानेपर संयम टूटते ही यह पहलेसे अधिक बढ़ जाता है।

मोटे लोगोंको क्या करना चाहिये

१-मोटे लोगोंको गुलगुले गद्देपर न सोकर सख्त गद्देपर सोना चाहिये।

२-बिना भूखके नहीं खाना चाहिये। खरी भूखमें ही खायें और थोड़ी भूख रहते ही उठ जायँ।

३-खूब चबा-चबाकर खाना चाहिये। याद रखें कि—**दो मिनट भोजनालय, तो बीस मिनट शौचालय, बीस मिनट भोजनालय तो दो मिनट शौचालय।**

४-सुबह-शाम नियमपूर्वक खुली हवामें सैर करना तथा हल्के-फुल्के व्यायाम भी करना चाहिये। सैरके अभावमें भ्रमणयोग एवं इंजन दौड़ मोटापा घटानेमें सहायक होंगे।

५-कुछ दिन त्रिफला चूर्ण या विरेचनी रातको सोते समय एक गिलास गुनगुने पानीमें मिलाकर पीना चाहिये।

६-सप्ताहमें एक दिन दिनभर जलका उपवास करना चाहिये। शामको केवल हरी सब्जियाँ लें।

७-शीघ्र वजन घटानेके लिये नित्य भीगी तौलियासे घर्षण-स्नान करें। तत्पश्चात् सप्ताहमें एक दिन छोड़कर भाप-स्नान (स्टीम बाथ), एक दिन मिट्टी स्नान, एक दिन धूप स्नान (सन बाथ), एक दिन एक्यू तेल मालिश करें। इस प्रयोगसे ५०० ग्रामतक वजन नित्य घटते देखा गया है।

८-भोजनमें प्रात: गरम पानी+नींबू या मट्ठा। हरी सब्जियोंके सूप। गुनगुना जूस, दोपहरमें मौसमके पाचक फल, तीसरे पहर प्रात:की तरह तथा रात्रिमें परम्परागत रोटी+हरी सब्जी+सलाद या दाल+हरी सब्जी+सलाद या हरी सब्जी+दलिया या चावल+हरी सब्जी या दलिया+हरी सब्जी+सलाद लें। हाँ! अन्नकी मात्रा कम-से-कम और सब्जी+सलाद अन्नसे चार गुनी मात्रामें लें।

९-प्राय: मोटापेके कारण, कब्जके कारण, वायु विकारके कारण, अधिक जल्दी-जल्दी कपालभाति या आगे झुकनेवाले योगासनके कारण यदि आँतोंमें सूजन आ जाती है, तब कैसे भी कितना भी भार (वजन) घटानेका उद्यम करके भी नहीं घटता। ऐसी स्थितिमें यदि आप अपने मोटापेके अनुसार डबल या फोर लाइन बेली बेल्ट रातभर बाँधकर सोयें तो पेटकी किसी भी प्रकारकी सूजन २-३ माहमें ठीक हो जायगी एवं वजन घटानेमें निश्चित सहायता मिलेगी।

१०-कफसंचयके कारण बढ़ा मोटापा है तो नित्य रबरनेति अवश्य करें। पित्तसंचयके कारण बढ़ा मोटापा है तो नित्य कुंजर अवश्य करें। मलसंचयके कारण मोटापा है तो बस्ति करें। मूत्रसंचयके कारण है तो मेहन स्नान करें। अच्छा हो कि यदि किसी प्राकृतिक चिकित्सालयमें जाकर दस दिन शोधन (कायाकल्प) करायें तो सफलताकी सम्भावना बढ़ जायगी।

गो-चिन्तन—

पौराणिक ग्रन्थोंमें गौका महत्त्व

(डॉ० श्रीश्याम मनोहरजी व्यास)

हिन्दू संस्कृतिमें गौका बड़ा महत्त्व है। गौमातामें तैंतीस करोड़ देवताओंका निवास माना गया है। गौ, गायत्री, गौरी, गंगा और गणेश पूज्य और हमारी आस्थाके केन्द्र हैं। गौरीका अभिप्राय नारीसे है। हमारी संस्कृतिमें नारीको पूज्य माना गया है। वेदों, उपनिषदों एवं पुराणों तथा आर्ष ग्रन्थोंमें गायकी महिमा गायी गयी है। देवस्तुतिके समय बोले जानेवाले श्लोकमें भी गौको नमस्कार किया गया है—

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥

बृहद् स्कन्दपुराणमें आता है—

त्वं माता सर्वदेवानां त्वं च यज्ञस्य कारणम्।
त्वं तीर्थं सर्वतीर्थानां नमस्तेऽस्तु सदानघे॥

अर्थात् हे पापरहिते! तुम (गौ) समस्त देवोंकी जननी हो। तुम यज्ञकी कारण हो, तुम समस्त तीर्थोंकी महातीर्थ हो, तुमको सदैव नमस्कार है।

अथर्ववेद, पद्मपुराण, महाभारत, स्कन्दपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्माण्डपुराण एवं विष्णुपुराण आदि ग्रन्थोंमें गौमाताकी महिमा गायी गयी है। वेदोंमें यह भी लिखा है कि गाय विश्वका स्वरूप है। यथा—'**एतद् वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम्।**'

पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्ण गोपालक थे। उनका सम्पूर्ण बाल्यकाल गोसेवामें ही व्यतीत हुआ। इसीलिये वे गोपाल कहलाये। गरुड़पुराणमें मृत्युके पश्चात् भयंकर वैतरणी नदीको जीवात्माका गायकी पूँछद्वारा पार करनेका वर्णन आता है। इसीलिये मृतकके परिजन विप्रको गोदान करते हैं। गोदानका महत्त्व प्राचीनकालसे ही चला आ रहा है। गोसेवासे लक्ष्मी प्राप्त होती है। गोसेवासे सन्तानप्राप्ति भी होती है। एक प्राचीन ग्रन्थमें लिखा है—

पृष्ठे ब्रह्मा गले विष्णुर्मुखे रुद्रः प्रतिष्ठितः।
मध्ये देवगणाः सर्वे रोमकूपे महर्षयः॥
नागाः पुच्छे खुराग्रेषु ये चाष्टौ कुलपर्वताः।
मूत्रे गंगादयो नद्यो नेत्रयोः शशिभास्करौ।
येन यस्यास्तनौ वेदाः सा धेनुर्वरदास्तु मे॥

अर्थात् जिस गोकी पीठमें ब्रह्मा, गलेमें विष्णु, मुखमें रुद्र, बीचमें समस्त देवता, रोमोंमें महर्षिगण, पूँछमें नाग, खुरोंमें आठों पर्वत, मूत्रमें गंगा आदि नदियाँ, दोनों नेत्रोंमें चन्द्र-सूर्य और स्तनोंमें वेद बसते हैं, वह गो मुझे वर देनेवाली हो।

पौराणिक मान्यताके अनुसार तीर्थस्थान, ब्राह्मणभोजन, महादान, भगवत्सेवा, समस्त व्रतोपवास, समस्त तप, पृथ्वी-पर्यटन और सत्य-भाषणसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह सब पुण्य केवल गोसेवासे शीघ्र प्राप्त होता है। भारतीय संस्कृतिका गोरक्षणसे घनिष्ठ सम्बन्ध है।

महामना मदन मोहन मालवीय कहा करते थे कि हर हिन्दूका कर्तव्य है कि वह गोपालन करे और हर गाँव, कस्बे और नगरमें एक हिन्दुओंका अखाड़ा हो, जिसके माध्यमसे वे अपनी बलवृद्धि कर सकें।

महाभारतमें लिखा है—भगवान् विष्णु, गो और भगवान् शंकरकी कृपासे पुत्रकी प्राप्ति होती है।

गायका गोबर और मूत्र भी पवित्र माने गये हैं, वैज्ञानिक दृष्टिसे भी ये बहुत उपयोगी हैं।

गोवधकी कल्पनासे ही घोर पाप लगता है। इतिहास गवाह है कि प्राचीनकालमें कई वीर पुरुषोंने गायके रक्षार्थ अपने प्राणोंका भी बलिदान कर दिया। धर्मग्रन्थोंमें कहा गया है कि जिस घरमें गायको कष्ट दिया जाता है, उस घरके स्वामीको मृत्युके बाद नरककी यातना सहनी पड़ती है। राजाका प्रथम कर्तव्य भी गो, ब्राह्मण और पृथ्वीकी रक्षा करना कहा गया है। गोपाष्टमी पर्वपर गायकी पूजा की जाती है।

गृहस्थका कर्तव्य है कि वह नित्य गायको कम-से-कम एक रोटी अवश्य खिलाया करे। इसे गौग्रास कहा जाता है। स्वतन्त्र भारतमें यदि गोवध होता है, तो यह हमारे लिये कलंककी बात है। हर सनातनधर्मीका कर्तव्य है कि यदि वह गोपालन नहीं कर सके, तो कम-से-कम गायका दूध एवं घीका उपयोग अवश्य करे। धार्मिक, आर्थिक और नैतिक सभी दृष्टियोंसे गोका महत्त्व है। आरोग्यकी दृष्टिसे गायका दूध पूर्ण खाद्य पदार्थ है और गोघृत स्वास्थ्यवर्धक है। गायका दुग्ध शरीरमें जाकर तत्काल ऊर्जा प्रदान करता है। अतः हमें गोरक्षणके महत्त्वको समझकर इसे व्यवहारमें लाना चाहिये।

सन्त-चरित—

ब्रह्मचारी श्रीमहेन्द्र महाराज

(डॉ० श्रीगोपालप्रसादजी पाठक, एम०ए०, पी-एच०डी०)

इस धराधामपर महान् सन्तोंका प्राकट्य समय-समयपर होता ही रहा है। दैहिक, दैविक, भौतिक सन्तापोंको दूर करनेमें एवं अध्यात्मकी अविरल धारा प्रवाहित करनेमें सन्तोंका महान् योगदान सदैवसे रहा है। भवतापदग्ध सांसारिक प्राणियोंके उद्धारहेतु कटिबद्ध विभिन्न सन्तों एवं महात्माओंमें ब्रह्मचारी श्रीमहेन्द्रजी महाराज (श्रीमहेन्द्र बाबा) बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें एक विशिष्ट सन्त माने गये हैं।

ब्रह्मचारी श्रीमहेन्द्र महाराज मानवमात्रसे प्रेम करनेवाले थे। इनके सम्मुख जो भी भाग्यशाली मनुष्य आता था, वह इनके प्रेममय आकर्षणके कारण सदैवके लिये इनका शिष्य अथवा अनुयायी बन जाता था। आप अपने सान्निध्यमें आनेवाले भक्तोंके उद्धारहेतु उनको उपासना-मार्गपर चलनेके लिये पूर्ण सम्बल प्रदान करते थे। इन्होंने भक्तोंके विश्वासको दृढ़ बनानेके लिये उन्हें ईश्वरीय महाशक्तियोंका साक्षात्कार भी कराया। भगवान्‌की भक्ति एवं भजनके विषयमें ये प्राय: तुलसीदासके इस दोहेको उद्धृत करते थे—

बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल॥

सन्तोंकी वाणी सर्वसमर्थ ईश्वरकी वाणी है। भक्तोंका विश्वास है कि सन्तोंके चरित्रोंका पठन, मनन सब प्रकारसे कल्याण करनेवाला है। यही सोचकर अनेक विद्वानोंने श्रीमहेन्द्र महाराजके चरित्रोंका गान किया है।

श्रीमहेन्द्र महाराजजीका बाल्यकाल—श्रीमहेन्द्र महाराजके पूज्य पिता श्रीकन्तू झा तथा माता भक्तिमयी श्रीमती दायीजी थीं। महाराजश्रीने अपने ननिहाल ग्राम मणिका, जिला दरभंगा (बिहार)-में फाल्गुन शुक्ला १३ संवत् १९६५ वि०सं० तदनुसार ४ मार्च सन् १९०८ में जन्म लिया। इनके नाना श्रीकान्त झा सुप्रसिद्ध तान्त्रिक एवं रईस जमींदार थे। इन्होंने ही श्रीमहेन्द्र बाबाकी शिक्षा-दीक्षाका समुचित प्रबन्ध किया। अन्य समयमें श्रीबाबा हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला, उर्दू आदि अनेक भाषाओंके विद्वान् बन गये। बाल्यावस्थामें एक बार ये गम्भीर रूपसे बीमार हुए, किसी औषधिने भी लाभ न दिया, माँ भगवती दुर्गाकी कृपासे ही ये स्वस्थ हुए।

गृहत्याग—श्रीमहेन्द्र महाराज बचपनसे साधु-महात्माओंमें रुचि रखते थे। स्वयं साधु बनकर भिक्षा माँगते थे तथा प्राप्त भिक्षान्नको साधुओंमें बाँट देते थे। इनकी माँ इनके इन चरित्रोंको देखकर विकल हो उठती थीं, तो भी श्रीमहेन्द्र महाराजने इष्ट-चिन्तन एवं इष्ट-प्राप्तिकी समस्याको माताजीके समक्ष रखकर अनुनय-विनय करके उनसे महान् सन्त होनेका आशीर्वाद भी प्राप्त कर लिया।

संसारकी नश्वरताको देखकर तथा अपने गुरु श्रीमुनीन्द्रदेवको प्राप्त करनेकी चिन्तासे चिन्तित होकर श्रीमहेन्द्र महाराजने लगभग २२ वर्षकी अवस्था (१९३०)-में अपने माता-पिता, नानी-नाना आदि सबको हमेशाके लिये त्याग दिया।

जन्म-स्थान त्यागनेके पश्चात् आपने कलकत्ता पहुँचकर एक संस्कृत पाठशाला स्थापित की तथा इसे कॉलेजका रूप प्रदान किया। पिता तथा नानाको जब इनके कलकत्ता निवासका पता लगा, तो इन्होंने कलकत्ता नगरीको भी त्याग दिया।

भारत-भ्रमण—आपने सन् १९३४ में कलकत्ता छोड़नेके पश्चात् भारत-भ्रमणका निश्चय किया और गुजरात, राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, कैलास-मानसरोवर, तिब्बत, भूटान आदिका भ्रमण किया। यात्राके अन्तर्गत आपने एक धोती तथा लँगोटी धारण की। इनके स्वरूपको देखकर जन-साधारण इन्हें बाबा या ब्रह्मचारी बाबा कहने लगे। गुजरात एवं राजस्थानके भक्त, इन्हें महाराजजी कहते हुए देखे गये। आपने

अपनी रचनाओंमें अपने नामके स्थानपर श्रीगुरुचरणाश्रित लिखा है। भू-सम्पत्तिके कागजोंमें एवं वित्तीय संस्था (बैंक)-के कागजोंमें इनका नाम महेन्द्र महाराज अंकित किया गया है।

श्रीकृष्णकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधारानीमें इनकी विशेष आस्था थी। अत: श्रीवृन्दावनमें जगज्जननी राधाकी उपासना करते हुए आपने श्रीराधाका साक्षात्कार किया। परमाराध्या श्रीराधाकी आज्ञासे आपने १९३५ ई० में मथुरा-गोकुलके मध्य व्रजके विशेष वन 'लोहवन' को अपनी साधना-स्थली बनाया। लोहवनके आवास-कालमें आपने समस्त व्रजमण्डलका दर्शन किया तथा अपनी साधनासे व्रजवासियोंको प्रभावित किया।

लोहवन-प्रवासके पश्चात् सन् १९४६ ई०में आपने माउण्ट आबूके निकट अम्बाजी नगरमें निवास किया। यहाँ रहकर कुछ वर्षोंतक आप दाँता स्टेटके राजा भवानीसिंहके आतिथ्यमें रहे। माँ अम्बाके अनुष्ठानमें इन्हें माँ अम्बासे प्रेरणा मिली कि उन्हें अपने गुरुदेवकी प्राप्तिहेतु कूर्मांचल क्षेत्रमें अल्मोड़ा एवं नैनीतालकी ओर जाना चाहिये।

समर्थगुरुका साक्षात्कार—अम्बाजी नगरमें माँ जगदम्बाका आशीर्वाद प्राप्तकर श्रीमहेन्द्र महाराज उत्तराखण्डको चल दिये। तीन वर्षके अथक परिश्रमके पश्चात् १९४९ में शीतलाखेत (अल्मोड़ा)-में आपको अपने गुरुदेवका साक्षात्कार हुआ। पूज्य गुरुदेवके साक्षात्कारके कुछ समयके अन्तरालमें आपने सिद्धाश्रम, गणादोलिया आश्रम, बाँसुली गुफा, छोटे कैलासकी गुफा, कठघारिया, हैड़ाखान, सल्जाग्राम आदि सिद्धपीठोंकी खोज की। आपने वृन्दावनसहित अनेक सिद्धपीठोंमें भगवान् सदाशिव तथा अपने सद्गुरुकी प्रतिमाएँ स्थापित कीं, जहाँ आज भी अनवरत अर्चना जारी है। वृन्दावनमें रंग मन्दिरके पास 'साम्ब सदाशिवकुंज' इनका प्रिय आश्रम है। यहाँ रहकर श्रीमहेन्द्र महाराजजीने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की। इनमें नाम-साधन, आशीर्वाद और आदेश, मानवमात्रके लिये आवश्यक कर्म, अनुपम कृपा, पुण्य स्मृति आदि प्रसिद्ध हैं। आपके दिव्य ग्रन्थ, दिव्य कथामृतका मार्मिक प्रसंग प्रस्तुत है—

विविध विश्व लीला रची, भाँति भाँति सुख देन।
अंश शुद्ध कँह विमुख लखि आवत शिव सुधि लेन॥

महासमाधि—काव्य लेखन, प्रवचन, सत्संग, यज्ञ आदि अनुष्ठानोंका सम्पादन करते हुए ब्रह्मचारी श्रीमहेन्द्र महाराज २३ जून १९६९ ई०को महासमाधिमें लीन हो गये। ब्रह्मलीन होनेके पश्चात् श्रीमहेन्द्र महाराजके शिष्यों एवं अनुयायियोंने श्रीमुनीन्द्रदेव तथा श्रीमहेन्द्र देवके अनेक विग्रहोंकी स्थापना विभिन्न तीर्थोंमें की है।

श्रीमहेन्द्र महाराजकी शिक्षाएँ—श्रीमहाराजजीने मानवके कल्याणहेतु श्रीभगवन्नामका स्मरण सर्वाधिक उपयोगी बताया है। नाम-स्मरण-विधि जाननेहेतु आपने 'नाम-साधक' पुस्तक लिखी है। आपके द्वारा शिक्षाप्रद रची गयी कुछ चौपाइयाँ प्रस्तुत हैं—

नाम भजो हिय शोधो भाई। प्रभु अभयंतर बैठ्यो आई॥
अंतर हृदय शुद्ध शिव वासा। पहिचानहु तजि अज्ञ दुराशा॥
गुरुप्रदत्त श्रीनाम जो साधा। सो साधक सुख लहै अगाधा॥
सत्य सनातन धर्म उदारा। ज्ञाननिहित शुचि कर्म उचारा॥
प्रेम सरलता सतयुग भ्राता। यहै धर्म मानव सुख दाता॥
सबहि स्वधर्म श्रेयकर दाता। द्वेष घृणा नहिं धर्म कहाता॥
क्षुद्र सहायक जे जग माँही। तिनकर ध्यान रहत मन माँही॥
सकल जगत के आश्रय प्यारे। कस न भजौ नर साँझ सकारे॥

श्रीमहेन्द्र महाराजजीने आत्मचिन्तन एवं चेतावनीके अनेक पद रचे हैं, उनमेंसे एक पद प्रस्तुत है—

मनुआ पग पग धोखा खाता।
जग सराय में ठग बहुतेरे, बारहि बार ठगाता॥
ठग ठाकुर का भेद न समझा, यों ही जनम गँवाता।
सत्य सरलता प्रेम भुलाकर भूल भुलैया खाता॥
ज्ञान दृष्टिसे देख बावरे, जहँ तहँ तू ललचाता।
लाभ लोभ में पड़कर प्यारे प्रीतम प्रीत छुड़ाता॥
अब उर लेइ बसाय प्रीति प्रभु पावन पद जल जाता।
कहत महेन्द्र तव मीत खड़ा है, मंद मंद मुसुकाता॥

सुभाषित-त्रिवेणी

संघ-शक्ति
[Unity is strength]

तन्तवः प्यायिता नित्यं तनवो बहुलाः समाः।
बहून् बहुत्वादायासान् सहन्तीत्युपमा सताम्॥

नित्य सींचकर बढ़ायी हुई पतली लताएँ बहुत होनेके कारण बहुत वर्षोंतक नाना प्रकारके झोंके सहती हैं; यही बात सत्पुरुषोंके विषयमें भी समझनी चाहिये। (वे दुर्बल होनेपर भी सामूहिक शक्तिसे बलवान् हो जाते हैं।)

Slim creepers, daily nourished with water, withstand strong gusts of wind for years, for they are many and together. The same is true of noble and truthful persons, Individually weak, they are formidable when united.

धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ॥

भरतश्रेष्ठ धृतराष्ट्र! जलती हुई लकड़ियाँ अलग-अलग होनेपर धुआँ फेंकती हैं और एक साथ होनेपर प्रज्वलित हो उठती हैं। इसी प्रकार जातिबन्धु भी फूट होनेपर दुःख उठाते और एकता होनेपर सुखी रहते हैं।

O Bharatasrestha! Burning logs of wood emit smoke when kept separate. When these are brought together, a conflagration occurs. Members of a clan suffer when disunited and prosper when united.

ब्राह्मणेषु च ये शूराः स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च।
वृन्तादिव फलं पक्वं धृतराष्ट्र पतन्ति ते॥

धृतराष्ट्र! जो लोग ब्राह्मणों, स्त्रियों, जातिवालों और गौओंपर ही शूरता प्रकट करते हैं, वे डंठलसे पके हुए फलोंकी भाँति नीचे गिरते हैं।

Dhrtarastra! Those who try to exhibit their strength over the cows, the Brahmins, the women and members of their clan, fall to the ground like ripe fruit cracked at the stem.

महानप्येकजो वृक्षो बलवान् सुप्रतिष्ठितः।
प्रसह्य एव वातेन सस्कन्धो मर्दितुं क्षणात्॥

यदि वृक्ष अकेला है तो वह बलवान्, दृढ़मूल तथा बहुत बड़ा होनेपर भी एक ही क्षणमें आँधीके द्वारा बलपूर्वक शाखाओंसहित धराशायी किया जा सकता है।

A tree standing alone, though strong, widespread and with deep roots, can be uprooted with all its branches by a powerful windstorm in no time.

अथ ये सहिता वृक्षाः संघशः सुप्रतिष्ठिताः।
ते हि शीघ्रतमान् वातान् सहन्तेऽन्योन्यसंश्रयात्॥

किंतु जो बहुत-से वृक्ष एक साथ रहकर समूहके रूपमें खड़े हैं, वे एक-दूसरेके सहारे बड़ी-से-बड़ी आँधीको भी सह सकते हैं।

However, when a number of trees stand together as a group in a grove, they can withstand the fiercest of gales.

एवं मनुष्यमप्येकं गुणैरपि समन्वितम्।
शक्यं द्विषन्तो मन्यन्ते वायुर्द्रुममिवैकजम्॥

इसी प्रकार समस्त गुणोंसे सम्पन्न मनुष्यको भी अकेले होनेपर शत्रु अपनी शक्तिके अन्दर समझते हैं, जैसे अकेले वृक्षको वायु।

Like the wind overcoming the strength of a solitary tree, a man endowed with all the qualities, if alone, is considered an easy prey by his enemies.

अन्योन्यसमुपष्टम्भादन्योन्यापाश्रयेण च।
ज्ञातयः सम्प्रवर्धन्ते सरसीवोत्पलान्युत॥

किंतु परस्पर मेल होनेसे और एकसे दूसरेको सहारा मिलनेसे जातिवाले लोग इस प्रकार वृद्धिको प्राप्त होते हैं, जैसे तालाबमें कमल।

However, when united and supporting each other, members of a clan prosper like the lotus in a pond.

[विदुरनीति अ. ४।५९—६५]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०८०, शक १९४५, सन् २०२३, सूर्य-दक्षिणायन, शरद-ऋतु, आश्विन कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १।५८ बजेतक	शनि	रेवती रात्रिमें ११।५७ बजेतक	३० सितम्बर	**मेषराशि** रात्रिमें ११।५७ बजेसे, **महालयारम्भ, प्रतिपदा श्राद्ध,** अपराह्नमें **द्वितीया श्राद्ध, पंचक समाप्त** रात्रिमें ११। ५७ बजे।
द्वितीया ,, १२।१० बजेतक	रवि	अश्विनी ,, ११।४ बजेतक	१ अक्टूबर	**भद्रा** रात्रिमें ११। २६ बजेसे, **तृतीयाश्राद्ध, मूल** रात्रिमें ११।४ बजेतक।
तृतीया ,, १०।४२ बजेतक	सोम	भरणी ,, १०।३० बजेतक	२ ,,	**भद्रा** दिनमें १०। ४२ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ७। ४८ बजे, **चतुर्थीश्राद्ध, वृषराशि** रात्रिशेष ४। २८ बजेसे।
चतुर्थी ,, ९। ३९ बजेतक	मंगल	कृत्तिका ,, १०।२२ बजेतक	३ ,,	**पंचमीश्राद्ध।**
पंचमी ,, ९। ४ बजेतक	बुध	रोहिणी ,, १०।४४ बजेतक	४ ,,	**षष्ठीश्राद्ध।**
षष्ठी ,, ८। ५८ बजेतक	गुरु	मृगशिरा ,, ११।३४ बजेतक	५ ,,	**सप्तमीश्राद्ध,** भद्रा दिनमें ८।५८ बजेसे रात्रिमें ९।११ बजेतक, **मिथुन राशि** दिनमें ११। ९ बजेसे।
सप्तमी ,, ९। २५ बजेतक	शुक्र	आर्द्रा ,, १२।५७ बजेतक	६ ,,	**अष्टमीश्राद्ध, जीवत्पुत्रिकाव्रत।**
अष्टमी ,, १०।२१ बजेतक	शनि	पुनर्वसु ,, २।४६ बजेतक	७ ,,	**कर्कराशि** रात्रिमें ८। १९ बजेसे, **मातृनवमी, नवमीश्राद्ध।**
नवमी ,, ११।४६ बजेतक	रवि	पुष्य रात्रिशेष ४।५९ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२।३९ बजेसे, **श्रीदुर्गानवमी, मूल** रात्रिशेष ४।५९ बजेसे।
दशमी ,, १। ३२ बजेतक	सोम	आश्लेषा अहोरात्र	९ ,,	**भद्रा** दिनमें १। ३२ बजेतक, **दशमीश्राद्ध।**
एकादशी ,, ३।३४ बजेतक	मंगल	आश्लेषा प्रात: ७। २७ बजेतक	१० ,,	**सिंहराशि** प्रात: ७। २७ बजेतक, **इन्दिरा एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी सायं ५।४१ बजेतक	बुध	मघा दिनमें १०।५ बजेतक	११ ,,	**द्वादशीश्राद्ध, मूल** दिनमें १०। ५ बजेतक, **चित्रका सूर्य** रात्रिमें १०। ४१ बजे।
त्रयोदशी रात्रिमें ७।४४ बजेतक	गुरु	पू०फा० ,, १२।४० बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७।४४ बजेसे, **कन्याराशि** रात्रिमें ७।१५ बजेसे, **प्रदोषव्रत, त्रयोदशीश्राद्ध।**
चतुर्दशी ,, ९।२९ बजेतक	शुक्र	उ०फा० ,, ३।२ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** प्रात: ८। ३६ बजेतक, **चतुर्दशीश्राद्ध।**
अमावस्या ,, १०।५४ बजेतक	शनि	हस्त सायं ५।५ बजेतक	१४ ,,	तुलाराशि रात्रिशेष ५। ५४ बजेसे, **अमावस्या, अमावस्या श्राद्ध, पितृविसर्जन।**

सं० २०८०, शक १९४५, सन् २०२३, सूर्य दक्षिणायन, शरद-ऋतु, आश्विन-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ११।५२ बजेतक	रवि	चित्रा रात्रिमें ६।४३ बजेतक	१५ अक्टूबर	**शारदीय नवरात्रारम्भ।**
द्वितीया ,, १२।१९ बजेतक	सोम	स्वाती ,, ७।५२ बजेतक	१६ ,,	× × × × ×
तृतीया ,, १२।१६ बजेतक	मंगल	विशाखा ,, ८।३१ बजेतक	१७ ,,	**वृश्चिकराशि** दिनमें २। २१ बजेसे।
चतुर्थी ,, ११।४२ बजेतक	बुध	अनुराधा ,, ८।४१ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** दिनमें ११।५९ बजेसे रात्रिमें ११।४२ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेश चतुर्थीव्रत, तुला संक्रान्ति** दिनमें ३।५२ बजे, **मूल** ८।४१ बजेसे।
पंचमी ,, १०।४० बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा ,, ८। २३ बजेतक	१९ ,,	**धनुराशि** रात्रिमें ८। २३ बजेसे।
षष्ठी ,, ९। १३ बजेतक	शुक्र	मूल ,, ७।४० बजेतक	२० ,,	× × × × ×
सप्तमी ,, ७। २७ बजेतक	शनि	पू०षा० ,, ६। ३७ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७। २७ बजेसे, **मकरराशि** रात्रिमें १२। १७ बजेसे।
अष्टमी सायं ५। २५ बजेतक	रवि	उ०षा सायं ५। १८ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** प्रात: ६। २६ बजेतक, **श्रीदुर्गाष्टमीव्रत।**
नवमी दिनमें ३।१० बजेतक	सोम	श्रवण दिनमें ३।४६ बजेतक	२३ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिमें २। ५७ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें २। ५७ बजे, **श्रीदुर्गानवमी।**
दशमी ,, १२। ४९ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा ,, २। २८ बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११। ३६ बजेसे।
एकादशी ,, १०।२५ बजेतक	बुध	शतभिषा ,, १२।२७ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** दिनमें १०। २५ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिशेष ५। १४ बजेसे, **पापांकुशा एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, ८। ३ बजेतक	गुरु	पू०भा० ,, १०।४९ बजेतक	२६ ,,	**प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी रात्रिमें ३।४७ बजेतक	शुक्र	उ०भा० ,, ९।२० बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३। ४७ बजेसे।
पूर्णिमा ,, २। १ बजेतक	शनि	रेवती दिनमें ८।३ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** दिनमें २। ५५ बजेतक, **मेषराशि** दिनमें ८। ३ बजेसे, **पंचक समाप्त** दिनमें ८। ३ बजे, **पूर्णिमा।**

कृपानुभूति

माँका प्रत्यक्ष आशीर्वाद

माँके प्रत्यक्ष आशीर्वादकी एक पुरानी घटना है। मेरे बड़े बेटेने उस वर्ष हाईस्कूलकी परीक्षा प्रथम श्रेणीसे उत्तीर्ण की थी। मेरे पतिने कहा कि बेटेने हाईस्कूल पास कर लिया है, अतः अब उसका यज्ञोपवीत कर देना चाहिये। मैंने भी अपनी सहमति दे दी। घरमें पहला उत्सव होना था, ऐसेमें सभी नाते-रिश्तेदारोंको बुलाना था। सबसे बड़ी समस्या घरमें काम करनेवाले नौकरकी थी।

जनपद मैनपुरीमें मुख्य सड़कपर कोतवालीके बगलमें एक पेट्रोल पम्प है। उसके बगलमें माँ जगदम्बाका मन्दिर है। अब तो काफी विशाल बन गया है। उस समय सिर्फ माँका मन्दिर एक कमरेमें था। हम और वे बहुधा जब बाजार आदि जाते, तब माँके दर्शन अवश्य करते थे। वहाँपर एक बाबा रहते थे। दो-चार बार उनके पास बैठकर भी जगदम्बाके बारेमें चर्चा करती। उस दिन माँके दर्शनके बाद बाबाके पास बैठी तो इनके मुँहसे निकल गया कि बाबाजी! अगर माँकी कृपा हो तो बड़े पुत्रका यज्ञोपवीत करना चाहता हूँ, लेकिन घरमें काम करनेवाले नौकरकी समस्या है। बाबाजीने कहा कि अच्छा विचार है। माँकी कृपासे पूरा होगा। उनके पास एक नौजवान लड़का बैठा था। बाबाजीने उसकी ओर इशारा करके कहा—घरका सारा कार्य यह करेगा। हमलोग प्रसन्नमनसे घर लौट आये।

पण्डितजीसे यज्ञोपवीतकी तिथि निकलवाकर निमन्त्रण बँटवाये गये। हलवाई इत्यादिकी व्यवस्थाकर तैयारियाँ प्रारम्भ कर दी गयीं। घरमें बैठकर इन्होंने सभी नाते-रिश्तेदारोंकी सूची बनाकर निमन्त्रण कार्ड डिस्पैच करनेके पूर्व माँके दरबारमें माँको कार्ड दिया और एक कार्ड बाबाजीको भी प्रदान किया। बाबाजीने उसी दिन इनके साथ स्कूटरपर उस नौकरको भी घर भेज दिया और उसने सारा काम खुशी-खुशी सँभाल लिया।

सभी रिश्तेदार आ चुके थे, घरमें भीड़-भाड़ अधिक हो गयी थी। पास-पड़ोसमें कमरे लिये गये थे। पासके क्वार्टरमें एक कमरेको स्टोर बनाया गया था। उसी कमरेमें हलवाईकी समस्त सामग्री रख दी गयी। आज यज्ञोपवीत था। सुबहसे हलचल थी। आठ बजे पण्डितजी आ गये और यज्ञोपवीतकी प्रक्रिया प्रारम्भ हुई, जो शाम चार बजेतक चली। इसी दिन हलवाईने मिठाई बनानेका कार्य करना प्रारम्भ किया। इन्होंने हलवाईको दो टीन घीके दिये। शामको दोनों टीन समाप्त हो गये थे और इनमें बूँदीके लड्डू एवं काला जाम बनकर तैयार हो गये थे।

यज्ञोपवीत सम्पन्न होनेके बाद आज भोज था। हलवाई सुबह आठ बजे आ गये और अपना कार्य सँभाल लिया। इन्होंने हलवाईको अन्य सामान स्टोरसे देनेके अलावा एक टीन घी दिया और उससे पूछा कि क्या और आवश्यकता होगी? जिसपर हलवाईने कहा कि एक टीनकी और जरूरत पड़ सकती है। स्टोरमें एक टीन भरा हुआ घी सुरक्षित था, क्योंकि इन्होंने चार टीन घी खरीदा था। खाना तैयार हो जानेपर शामको मैंने एक टिफिनमें सारा सामान लगाकर रामू (नौकर)-के हाथों माँ जगदम्बाके मन्दिर भेज दिया। रातको १२ बजेतक दावत चली। करीब ३०० या ३५० आदमियोंने भोजन किया। सुबह जब सामान देखा गया तो हलवाईके सामानमें दो टीन घीके खाली मिले, जिसमें एकमें आधेसे कम घी था। मिले टीन देखकर ये तुरन्त स्टोरमें चेक करने गये तो वहाँपर एक टीन रखा हुआ मिला। इनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि ये टीन घीका कहाँसे आया, कौन लाया! हलवाईसे पूछनेपर उसने बताया करीब १० बजेके लगभग घीकी और जरूरत पड़ी तो हमने कहा कि बाबूजीको बुला लो, घी निकालकर दें कि इसके ५ मिनटमें एक आदमी घीका टीन लेकर आया कि लो घी। आदमी पायजामा-कुर्ता पहने था। इनको बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि स्टोरमें टीन लेने गया ही नहीं। यह टीन घीका कहाँसे आया, सभी विशेष लोगोंसे इस बारेमें जानकारी की गयी तो सभीने अनभिज्ञता प्रकट की। जब इन्होंने इस बातको मुझे बताया तो मैंने माँ जगदम्बाको प्रणाम किया और इनसे कहा कि ये माँ जगदम्बाका प्रत्यक्ष आशीर्वाद था। यह घी उन्होंने भिजवाया था, क्योंकि मैंने टिफिनमें प्रसाद माँके लिये मन्दिर भेजा था। अतः उन्होंने उसका प्रतिफलके रूपमें घीका टीन आशीर्वादस्वरूप दिया है।

यदि माँ जगदम्बापर सच्ची आस्था एवं विश्वास है तो माँ अवश्य सुनती हैं। जय माँ अम्बे! तेरी लीला अपरम्पार है! **[श्रीमती पुष्पाजी शुक्ला]**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

प्रभुको अपना मान लो

शादीके बाद जब मैं ससुराल आयी, तो परिवारवालोंने बहुत आत्मीयतासे स्वीकार किया। सन्त स्वभावके बाबूजी (पूज्य श्वशुरजी) अक्सर मेरे पास आ जाते और परिवारके रिश्तेदारोंके विषयमें बतलाते। वे कहा करते—'प्रभुको अपना मान लो। प्रभु अपने हैं।' ये पंक्तियाँ मैं अक्सर उनके मुखसे सुनती थी।

बात उस समयकी है, जब मेरे बड़े बेटेका जन्म हुआ था। वह तीन-चार महीनेका था। बाबूजीने एक दिन फिर वही बात कही। तभी मैंने कहा कि इसमें मानना क्या है? गोदके बेटेको दिखाकर मैंने कहा कि यदि कोई कहे कि इसे अपना बेटा मान लो, तो इसमें मानना क्या है? यह तो बेटा है ही। यदि कोई कहे कि आपको बाबूजी मान लूँ, तो इसमें मानना क्या है? आप तो बाबूजी हैं ही। आप जो हमेशा कहते हैं कि प्रभुको अपना मान लो, तो इसमें मानना क्या है? प्रभु तो अपने हैं ही। यह सुनकर बाबूजी गम्भीर हो गये। कुछ रुककर उन्होंने जवाब दिया कि यदि सचमुच ऐसा है, तो बहुत अच्छी बात है। दरअसल औरोंके बहाने मैं स्वयंको ही याद दिलाता रहता हूँ।

कुछ दिन बाद जब मैं पीहर गयी, तो यह पूरा दृष्टान्त मैंने अपने पिताजीको सुनाया। उनकी जो प्रतिक्रिया थी, वह इस प्रकार थी—'बेटी! तुम्हारे श्वशुरजी बहुत सज्जन व्यक्ति हैं। तुम जो यह कहती हो कि प्रभुको अपना मानना क्या? वे तो अपने हैं ही। यह बहुत अच्छी बात है। पर यह बात इतनी आसान भी नहीं है। जो व्यक्ति प्रभुको हृदयसे अपना मान लेता है, उसके हर क्रिया-कलापमें, बोली-व्यवहारमें यह बात झलकने लगती है। उसके पूरे व्यक्तित्वमें यह आभासित होने लगता है। उसे किसीसे कोई शिकवा-शिकायत नहीं रहती। वह सुख और दु:खमें तटस्थ रहता है। 'प्रभु अपने हैं'—यह कह देना जितना सरल है, उसे जीवनमें उतारना उतना ही कठिन, किंतु प्रयत्न करते रहना चाहिये।' **[डॉ० अरुणा 'अनु']**

(२)

गया-श्राद्धसे पुत्र

गया-श्राद्ध पितरोंकी तृप्तिके लिये परमावश्यक बताया गया है। पर आजके आधुनिक वातावरण और शिक्षा-दीक्षामें पालित-पोषित लोग इसे ढोंगमात्र कहकर हँसी उड़ाते हैं। मैं एक ऐसे सज्जनको जानता हूँ, जिनको इसमें नाममात्रके लिये भी विश्वास नहीं था। घरमें श्राद्ध आदि होते थे, पर उनके लिये कोई महत्त्व नहीं था। परम्पराका निर्वाहमात्र था।

उनके कई पुत्र हुए। पर होते ही मर जाते थे। कई ज्योतिषियोंने भाग्यमें पुत्र नहीं है, कह दिया। पर सौभाग्यसे एक पण्डितजीने गया-श्राद्धका सुझाव दिया। वंशकी रक्षाके लिये विवश हो वे तैयार हुए। सबसे पहले श्मशानमें जा पितरोंको गया-श्राद्धके लिये आमन्त्रित किया और वहाँसे घर न आकर सीधे स्टेशन चले गये। पहले प्रयागमें त्रिवेणीस्नान और बादमें काशीमें गंगास्नान किया। पटना होते हुए पुनपुन गये। पहला पिण्डदान वहीं किया।

गयाजीमें सौभाग्यसे उन्हें उत्तम कर्मकाण्डी पण्डितजी मिल गये। उन्होंने 'कल्याण'के तीर्थाङ्कमें बतायी विधिके अनुसार गयाजीमें सभी स्थानोंपर पिण्डदान शास्त्रोक्त रीतिसे सम्पन्न करवाया।

इसके दो वर्ष बाद पितरोंकी कृपासे उनके एक पुत्र हुआ और दो वर्ष बाद और एक पुत्र हुआ। इस प्रकार आज उनके एक नहीं, दो-दो पुत्र हैं। यह सब 'गया-श्राद्ध' का ही पुण्य-प्रताप वे मानते हैं। अब तो श्रद्धा और भक्तिपूर्वक श्राद्ध करते हैं। उनका विश्वास दृढ़ हो गया है। वे अपने अनेक मित्रोंको गया-श्राद्धके लिये प्रेरितकर भेज चुके हैं।

[श्रीवेंकटलालजी ओझा]

(३)

ईश्वर जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं

बेटी सयानी हो चुकी थी। बी०एस-सी०, बी०एड० करनेके पश्चात् टीचरकी नौकरी तो नहीं मिल पायी, लेकिन दिल्ली सरकारमें नौकरी लग गयी। नौकरी बहुत अच्छी नहीं तो बुरी भी नहीं थी। जब भी आफिससे छुट्टी मिलती, मैं कहीं-न-कहीं लड़का देखने निकल जाता। बहुत लड़के देखे, परंतु कहीं बात बननेको तैयार नहीं हुई। किसीको हम रिजेक्ट कर देते और कोई हमें रिजेक्ट कर देता। जब कोई मेरी बेटीको अथवा लेन-देनको पसन्द न करता तो मुझे इस बातसे बहुत दुःख होता कि मेरी बेटीको इससे कष्ट पहुँचता होगा। यद्यपि मेरी बेटी बहुत समझदार है, पढ़ी-लिखी है, लेकिन पिताके लिये तो वह आज भी बहुत छोटी-सी, कोमल-सी बेटी है, जिसे कभी कोई तकलीफ न हो। आखिर एक दिन मैंने हिम्मतकर उसे अपने पास बुलाया और कहा कि मैं कई लड़के किन्हीं कारणोंसे नापसन्द कर चुका हूँ और यदि तुम्हें भी कोई किसी वजहसे नापसन्द करे तो दुखी मत होना। उसने इस सम्बन्धमें मुझे बड़ी ही शालीनतासे उत्तर दिया—पिताजी! आप जो कर रहे हैं, बिलकुल ठीक कर रहे हैं। आप इस तनावसे मुक्त रहें कि यदि मुझे कोई पसन्द नहीं करता तो इससे मैं दुखी होती होऊँगी—मैं बिलकुल दुखी नहीं होती; क्योंकि इसको मैं बिलकुल हलके तौरपर लेती हूँ और सच तो यह है कि जब हममें कोई नकारात्मक कमी है ही नहीं, तो किसीकी पसन्द या नापसन्दसे मेरे मनपर कोई फर्क नहीं पड़ता। आप मेरी तरफसे निश्चिन्त रहिये और अपना काम करिये। मैं बेटीका उत्तर पाकर आश्वस्त हो गया।

उन दिनों मेरी ड्यूटी शिक्षा एवं विकास मन्त्रीके निवास-कार्यालयपर चल रही थी। एक दिन मन्त्रीजीके अतिथिके रूपमें एक साधु उनके घरपर आये, जिनका वहाँपर तीन-चार दिन रुकनेका कार्यक्रम था। साधु तो बहुत देखे, लेकिन इतने अद्भुत व्यक्तित्वके साधु पहली बार देखे थे। छः फुटसे ऊँचा कद, हृष्ट-पुष्ट शरीर, लम्बी-लम्बी जटाएँ एवं दाढ़ी-मूँछ। यद्यपि किसी भी प्रकारकी गन्धसे मुझे एलर्जी है, लेकिन साधुजी जिधरसे निकल जाते, उधरका पूरा वातावरण अजीब-सी मनमोहक सुगन्धसे भर जाता। मन्त्रीजीके निवास-कार्यालयके माध्यमसे मेरा उनसे सीधा सम्पर्क रहता। मैं उनसे अत्यधिक प्रभावित था। वे अपनी कोई भी छोटी-मोटी समस्या बताते, तो मैं उसे तुरन्त हल करनेका प्रयास करता।

जब वे साधुजी मन्त्रीजीके घरसे विदा होने लगे, तो विदाईसे पहले वे अकेले मेरे कमरेमें आये और उन्होंने कहा—'शर्माजी, मैं आपकी सेवासे बहुत प्रसन्न हूँ, आपकी कोई समस्या हो तो मुझे अवश्य बतायें।' मैंने उनको प्रणाम करते हुए उनसे आशीर्वाद चाहा और साथ ही अपनी समस्या भी बता दी कि बेटी शादीके लायक है—उसे वर कैसा और कबतक मिलनेकी आशा है? साधुजीने कुछ पलके लिये आँखें बन्द कर लीं और मेरी बेटीका नाम, जन्मतिथि एवं जन्मका समय पूछा। तीनों जानकारी मिलनेके तुरंत पश्चात् उन्होंने इस प्रकार बोलना आरम्भ किया—पहली बात—बेटी बहुत भाग्यवान् है, राजयोग है, अच्छे पद-प्रतिष्ठावाला वर मिलेगा और दूसरी बात—जब एक बार रिश्ता बनते-बनते समाप्त हो जाय, तो समझना उसके लिये योग्य वर मिलनेवाला है। साधुजीने आँखें खोलीं और मुझे आशीर्वाद देकर विदा हो गये।

साधुजीकी बात भूल मैं यथावत् अपने कार्यमें लग गया। जब भी मौका मिलता, मैं लड़केकी खोजमें निकल जाता। आखिर एक लड़का पसन्द आया—सी०ए० कर रहा था—दो विषयोंका रिजल्ट आना बाकी था। बेटीको दिखाया गया—बेटी भी पसन्द कर ली गयी। शुभ मुहूर्त देखकर लड़केको शकुनका नेग आदि दे दिया गया। मैं निश्चिन्त हो बेटीके विवाहकी तैयारी करने लगा।

अकस्मात् एक शाम लड़केके पिताजीका फोन आया कि लड़का शादीको मना कर रहा है। मैं उनके शब्द सुनकर सन्न रह गया। अपने आपको काबूकर मैंने पूछा कि आखिर ऐसा क्या हुआ कि लड़का अब मना कर रहा है? इसका कोई सन्तोषजनक उत्तर वे नहीं दे सके। हुआ यह कि लड़केके सी०ए० के जिन दो विषयोंका परिणाम आना था, वह आ गया था और इस प्रकार उसने सी०ए० कम्प्लीट कर ली थी। उसे और उसके परिवारको लगा कि अब लड़का सी०ए० हो गया है, कोई और अच्छी पैसेवाली

पार्टी मिल जायगी। इस प्रकार उनकी नीयत बदल गयी और रिश्ता कैंसिल हो गया। इस घटनाकी वजहसे कुछ दिन तनावमें रहनेके पश्चात् मैं 'यही ईश्वरेच्छा है'—ऐसा सोचकर सामान्य हो गया और मनको समझा लिया कि साधुजीने कहा था कि जब कोई रिश्ता बनते-बनते टूट जाय तो समझना कि अब योग्य वर मिलनेवाला है। इस प्रकार साधुजीकी एक बात तो पूरी हो चुकी थी।

एक दिन सायंकाल मेरे एक पहचानके सज्जन, जो दूरके रिश्तेदार भी हैं, उनका फोन आया और अन्य बातोंके अतिरिक्त उन्होंने यह भी पूछा कि बेटीकी शादी तो तय हो गयी होगी। उन्हें पता नहीं था कि रिश्ता कैंसिल हो चुका है। मैंने विस्तारसे उन्हें सारी बात बतायी तो उन्होंने मुझे चिन्ता न करनेके लिये कहकर कहा कि एक लड़का, नई दिल्लीमें है; जाकर देख लें। मैंने उनसे लड़केके घरका फोन-नम्बर लेकर लड़केके पिताजीसे बात की और निवेदन किया कि यदि उनकी अनुमति हो, तो मैं लड़केको उसके ऑफिसमें देख लूँ। मास्टरजीसे फोनपर किये गये वार्तालापसे लगा कि मैंने किसी सज्जन व्यक्तिसे बात की है।

एक दिन मैंने लड़केके ऑफिस जानेका कार्यक्रम बनाया। मैंने लड़केको देखा और कुछ मिनटकी मुलाकातके पश्चात् ही मैंने उसे अपनी बेटीके लिये उपयुक्त वरके रूपमें चयनित कर लिया।

आगे बात बढ़ानेके लिये मैं एक दिन अपनी पत्नीके साथ उसके घर पहुँच गया। वहाँपर उसके माता-पिताजीसे भेंट की। सब कुछ ठीक-ठाक था, लेकिन उनके घरको देखकर मेरे मनमें कुछ शंका हुई कि कहीं ऐसा न हो कि दिल्लीकी मोस्ट पाल्यूटिड एरिया गाँधीनगरमें मात्र ३५ वर्ग गजके मकानमें रहनेवाला मैं और नक्शेके हिसाबसे लगभग १००० वर्ग गजमें बना हुआ उनका मकान, 'बात न बननेका' कारण न बन जाय। बातों-ही-बातोंमें जब मैंने अपने छोटे-से मकानका जिक्र मास्टरजीसे किया तो उन्होंने मेरा संकोच दूर करते हुए कहा कि 'शर्माजी! यह मकान तो छः साल पहले बना है, इससे पहले तो हम भी गाँवके छोटेसे मकानमें ही गुजारा करते थे।' मास्टरजीकी बातने मेरे दिलको छू लिया। इस बातसे उनकी महानता झलकती थी।

बेटी पसन्द कर ली गयी। तत्पश्चात् शादीसे पहलेकी सभी रस्मो-रिवाज पूरी करते-कराते दिनांक २१ फरवरी, १९९६ ई० को मेरी बेटीकी शादी हो गयी। बेटीको ससुरालमें अनुकूल वातावरण मिला। वह प्रसन्न थी और जब बेटी प्रसन्न हो, तो संसारका सबसे सुखी व्यक्ति उस बेटीका पिता होता है और इस प्रकार मैं प्रभुकी कृपासे निश्चिन्त हो गया।

बेटीकी शादीके ठीक एक वर्ष पश्चात् शिवरात्रिके अवसरपर मैं अपने बच्चों एवं बेटी-दामादके साथ नीलकण्ठ महादेवके दर्शनके लिये हरिद्वार होते हुए ऋषीकेश पहुँचा। जब हम ऋषीकेशसे ऊपर पहाड़ोंपर चढ़ाई चढ़ रहे थे, तब दामादजीकी विलक्षण बुद्धिके विषयमें कई बातें पता चलीं। मैंने दामादजीसे कहा कि आप आई०ए०एस० या पी०सी०एस० आदिकी तैयारी क्यों नहीं करते? सन्तोषी प्राणीकी भाँति उन्होंने कह दिया कि जो मिल गया, वही ठीक है। लेकिन मुझे लगा कि कहीं किसी कोनेमें उन्होंने मेरी इस बातका नोटिस ले लिया था। हम नीलकण्ठ महादेवके दर्शनकर दिल्ली वापस आ गये।

एक दिन बेटीका फोन आया, पिताजी! इन्होंने आई०ए०एस० का फार्म भर दिया है। अब तैयारी कर रहे हैं। फिर एक दिन समाचार आया, यू०पी०एस०सी० से आई०ए०एस० का रिटेन पास कर लिया है। फिर पता चला कि इण्टरव्यू भी क्लीयर हो गया है। अब वे उच्च अधिकारी बन चुके थे।

मुझे साधुजीकी दूसरी बात याद आयी। उन्होंने कहा था—'बेटी बहुत भाग्यवान् है, अच्छे पद-प्रतिष्ठावाला वर मिलेगा।' साधुजीकी दूसरी भविष्यवाणी भी सत्य सिद्ध हो चुकी थी।

आज सोचता हूँ—सी०ए० लड़केसे बात नहीं बन पायी, उस समय तो दुःख हुआ था, लेकिन आज अच्छा लग रहा है—ईश्वर जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं। '**ईश्वरः यत्करोति शोभनमेव करोति।**' [श्री एम० एल० शर्माजी]

मनन करने योग्य

(१)

सत्संगकी महिमा

उलटा नाम जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

बहुत प्राचीन बात है, संगदोषसे एक ब्राह्मण क्रूर डाकू बन गया था। जन्मसे ही वह अशिक्षित था। अपने परिवारके पालन-पोषणके लिये उसने बड़ा घोर मार्ग अपनाया। भयंकर वनसे जानेवाले एक मार्गके समीप उसका अड्डा था। जो भी यात्री उधरसे निकलता, उसे वह मार डालता; बिना यह सोचे कि इस हत्यासे उसे लाभ कितना होगा! मृत व्यक्तिके पास जो कुछ मिलता, उसे लेकर वह शवको कहीं ठिकाने लगा देता। उसने इतने व्यक्ति मारे कि उनमें जो द्विजाति थे, उनके यज्ञोपवीत ही साढ़े सात बैलगाड़ी एकत्र हो गये।

वह मार्ग यात्रियोंके लिये मृत्यु-द्वार बन गया था। पथिकोंकी यह विपत्ति देवर्षि नारदसे देखी नहीं गयी। वे स्वयं उसी मार्गसे चल पड़े। सदाकी भाँति शस्त्र उठाये डाकू उनपर भी झपटा। देवर्षिको भला, भय क्या! उन्होंने कहा—'भाई! तुम व्यर्थ क्यों क्रोध करते हो? शस्त्र उठानेसे क्या लाभ? मैंने तो तुम्हारा कुछ बिगाड़ा नहीं है। तुम चाहते क्या हो?'

'मैं चाहता हूँ तेरे प्राण, तेरी यह तुमड़ी और वस्त्र तथा तेरे पास कुछ और निकले तो वह भी।' डाकू गरज उठा।

'निरन्तर जीव-हत्याका यह पाप किये बिना भी तो तुम वनके फल-कन्दसे पेट भर सकते हो!' देवर्षिका तेज और उनके स्वरमें भरी दया डाकूको स्तम्भित किये दे रहे थे।

'किंतु मेरे माता-पिता, स्त्री-पुत्रका पेट कौन भरेगा तू?' डाकू अभी क्रूर व्यंग्य ही कर रहा था।

'भाई! तुम जिनके लिये नित्य यह पाप करते हो, उनमेंसे कोई तुम्हारे पापका फल भोगनेमें भाग नहीं लेगा! अपने पापका फल तुम्हें अकेले ही भोगना होगा।' नारदजीने बड़ी मृदुतासे कहा।

'यह कैसे हो सकता है?' डाकू विचलित हो उठा था। 'जो मेरे पापसे कमाये धनका सुख भोगते हैं, वे मेरे पापके फलमें भी भाग तो लेंगे ही।'

'बहुत भोले हो, भाई! पापके फलमें कोई भाग नहीं लेगा। तुम्हें मेरी बातका विश्वास न हो तो घर जाकर उन लोगोंसे पूछ लो।' देवर्षिने बात पूरी कर दी।

'बाबाजी! तू मुझे मूर्ख बनाना चाहता है। मैं घर पूछने जाऊँ और तू यहाँसे खिसकता बने।' डाकूने फिर शस्त्र सम्हाला।

'तुम मुझे इस पेड़के साथ भलीभाँति बाँध दो।' चुपचाप नारदजी स्वयं एक पेड़से लगकर खड़े हो गये।

अब डाकूको उनकी बात सच्ची लगी। उसने उन्हें पेड़के साथ वनकी लताओंसे भलीभाँति बाँध दिया और स्वयं शीघ्रतापूर्वक घर पहुँचा। घर जाकर उसने पितासे पूछा—'पिताजी! आप तो जानते ही हैं कि मैं यात्रियोंकी हत्या करके उनके साथकी सामग्री लाता हूँ और उसीसे परिवारका भरण-पोषण करता हूँ। मैं जो नित्य यह पाप करता हूँ, उसके फलमें आपका भी तो भाग है न?'

तनिक खाँसकर पिताने उसकी ओर देखा और कहा—'बेटा! हमने तुम्हारा पालन-पोषण किया, तुम्हें छोटे-से-बड़ा किया और अब तुम समर्थ हो गये। हमारी वृद्धावस्था आ गयी। तुम्हारा कर्तव्य है हमारा भरण-पोषण करना। तुम कैसे धन लाते हो, इससे हमें क्या! तुम्हारे पाप-पुण्यमें भला हमारा भाग क्यों होने लगा!'

पहली बार डाकू चौंका। वह माताके पास गया; किंतु माताने भी उसे वही उत्तर दिया, जो पिताने दिया था। उसने पत्नीसे पूछा—तो पत्नीने कहा—'स्वामी! मेरा कर्तव्य है आपकी सेवा करना, आपके गुरुजनों तथा परिवारकी सेवा करना। वह अपना कर्तव्य मैं पालन करती हूँ। आपका कर्तव्य है मेरी रक्षा करना और मेरा भरण-पोषण करना, वह आप करते हैं। इसके लिये आप कैसे धन लाते हैं, सो आप जानें। आपके उस पापसे मेरा क्या सम्बन्ध? मैं उसमें क्यों भाग लूँगी?'

डाकू निराश हो गया, फिर भी उसने अपने बालक पुत्रसे अन्तमें पूछा। बालकने और स्पष्ट उत्तर दिया—

'मैं छोटा हूँ, असमर्थ हूँ; अत: आप मेरा भरण-पोषण करते हैं। मैं समर्थ हो जाऊँगा, तब आप वृद्ध और असमर्थ हो जायँगे। उस समय मैं आपका भरण-पोषण करूँगा और अवश्य करूँगा। यह तो परस्पर सहायताकी बात है। आपके पापको आप जानें; मैं उसमें कोई भाग लेना नहीं चाहता, न लूँगा।'

डाकूके नेत्रोंके आगे अन्धकार छा गया। जिनके लिये वह इतने पाप कर चुका, वे कोई उस पापका दारुण फल भोगनेमें उसके साथ नहीं रहना चाहते। पश्चात्तापसे जलने लगा उसका हृदय। दौड़ा वह वनकी ओर। वहाँ पहुँचकर देवर्षिके बन्धनकी लताएँ उसने तोड़ फेंकीं और क्रन्दन करता उनके चरणोंपर गिर पड़ा।

'तुम राम-नामका जप करो।' देवर्षिने प्रायश्चित्त बतलाया। किंतु हत्या-निष्ठुर हृदय, पाप-कलुषित वाणी यह दिव्य नाम सीधा होनेपर भी उच्चारण करनेमें समर्थ नहीं हुई। देवर्षि हारना नहीं जानते; वे जिसे मिल जायँ वह भगवान्‌के चरणोंसे दूर बना रहे, यह शक्य नहीं। उन्होंने कहा—'चिन्ता नहीं, तुम 'मरा-मरा' ही जपो।'

डाकू वहीं बैठ गया। उसे पता नहीं कि उसके उपदेष्टा कब चले गये। उसकी वाणी लग गयी जपमें—'मरा मरा मरा मरा मरा······दिन, सप्ताह, महीने और वर्ष बीतते चले गये; किंतु डाकूको कुछ पता नहीं था। उसके शरीरमें दीमक लग गये, दीमकोंकी पूरी बाँबी—वल्मीक बन गयी उसके ऊपर।'

डाकूके तपने सृष्टिकर्ताको आश्चर्यमें डाल दिया। वे हंसवाहन स्वयं पधारे वहाँ और अपने कमण्डलुके अमृत-जलसे उन्होंने उस तपस्वीपर छींटे दिये। उन जल-सीकरोंके प्रभावसे उस दीमकोंके वल्मीकसे जो पुरुष निकल खड़ा हुआ, वह अब पूरा बदल चुका था। उसका रूप, रंग, शरीर और हृदय सब दिव्य हो चुका था।

संसार ठीक नहीं जानता कि डाकूका नाम क्या था; कोई-कोई उसे रत्नाकर कहते हैं। किंतु वह जो तपस्वी उठा, वल्मीक (मिट्टीके ढेर)-से निकलनेके कारण उसे **वाल्मीकि** कहा गया। वह आदिकवि, भगवान् श्रीरामके निर्मल यशका प्रथम गायक—विश्व उसकी वन्दना करके आज भी कृतार्थ होता है। रहा होगा वह कभी अज्ञातनामा क्रूर डाकू; किंतु एक क्षणके सत्संगने उसे महत्तम जो बना दिया। **[संकलित]**

(२)

मूल्यविहीन रत्न

एक समयकी बात है, महाराज कृष्णदेवके निमन्त्रणपर भक्त पुरन्दर जब राजमहलमें पधारे, तो राजाने दो मुट्ठी चावल उनकी झोलीमें डालते हुए कहा—आप इस भेंटको स्वीकारकर मुझे अनुगृहीत करें। राजाने कुछ हीरे भी चावलके साथ मिला दिये थे।

भक्तकी पत्नीने चावल साफ करते समय देखा कि उसमें कुछ अनमोल पत्थर भी हैं। इन पत्थरोंको घरमें रखनेके स्थानपर उसने उन्हें कूड़ेदानमें फेंक दिया।

भक्त पुरन्दर राजाके महलमें प्रतिदिन जाने लगे। राजा सदैव ही दो मुट्ठी चावलके साथ हीरे मिलाकर दे देता। राजाने सोचा कि पुरन्दर और उसकी पत्नी धनके लालचसे मुक्त नहीं हैं। यदि वे मुक्त होते तो प्रतिदिन भिक्षाके लिये दरबारमें नहीं आते।

और एक दिन राजाने पुरन्दरसे कहा—भक्तराज! लालच मनुष्यको आध्यात्मिक उपलब्धियोंसे दूर कर देता है। आप स्वयं ही अपने विषयमें विचार करें·····।

राजाके मुखसे यह बात सुनकर पुरन्दरको बड़ा दु:ख हुआ, वे अगले दिन राजाको अपने घर ले गये। राजाने भक्तकी पत्नीसे पूछा—थालीमें चावल फैलाकर तुम क्या कर रही हो?

महाराज! कोई व्यक्ति चावलके साथ कुछ अनमोल पत्थर मिलाकर हमें देता है। मैं उनको निकालकर घरके बाहर कूड़ेदानमें फेंक देती हूँ। हमारे लिये उन पत्थरोंका कोई मूल्य नहीं है।

राजाने उन सभी बहुमूल्य पत्थरोंको कूड़ेदानमें पड़े देखा तो आश्चर्यचकित रह गया और भक्त-दम्पतीके चरणोंमें गिर पड़ा। **[श्रीअर्जुनलालजी बंसल]**

गीताप्रेससे प्रकाशित—चित्रमय प्रकाशन अब उपलब्ध

चित्रमय श्रीरामचरितमानस, सटीक (कोड 2295) ग्रन्थाकार [चार रंगोंमें]—श्रीरामचरितमानसका स्थान जगत्‌के साहित्यमें निराला है। साहित्यके सभी रसोंका आस्वादन करानेवाला तथा गार्हस्थ्य-जीवन, आदर्श पातिव्रतधर्म, भ्रातृधर्मके साथ-साथ सर्वोच्च भक्ति, ज्ञान, त्याग, वैराग्य तथा सदाचारकी शिक्षा देनेवाला—सबके लिये समान उपयोगी है। भगवान् श्रीरामकी लीलाका दर्शन करानेके उद्देश्यसे 300 से अधिक लीलाओंके मनमोहक रंगीन चित्रोंके साथ चार रंगोंमें आर्टपेपरपर प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹1600, **डाकखर्च फ्री।**

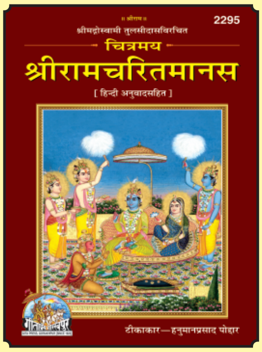

चित्रमय श्रीरामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड—मूल (कोड 2311) ग्रन्थाकार [चार रंगोंमें]—श्रीरामचरितमानसका 'सुन्दरकाण्ड' अपनी विशिष्टताके लिये प्रसिद्ध है। इसमें वर्णनीय सब कुछ 'सुन्दर' है। सुन्दरकाण्डमें राम सुन्दर हैं,कथाएँ सुन्दर हैं, सीता सुन्दर हैं। सुन्दरमें क्या सुन्दर नहीं है ? इसके पाठसे समस्त कामनाओंकी सिद्धि प्राप्त हो सकती है। श्रीहनुमान्‌जीकी लीलाके 70 से अधिक आकर्षक रंगीन चित्रोंके साथ आर्टपेपरपर प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹150, डाकखर्च ₹50

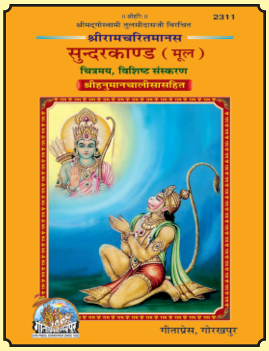

चित्रमय श्रीदुर्गासप्तशती, सटीक (कोड 2304) ग्रन्थाकार [चार रंगोंमें]—दुर्गासप्तशती हिन्दू-धर्मका सर्वमान्य ग्रन्थ है। इसमें भगवतीकी कृपाके सुन्दर इतिहासके साथ ही बड़े-बड़े गूढ़ साधन-रहस्य भरे हैं। कर्म, भक्ति और ज्ञानकी त्रिविध मन्दाकिनी बहानेवाला यह ग्रन्थ भक्तोंके लिये वाञ्छाकल्पतरु है। सकाम भक्त इसके सेवनसे मनोऽभिलषित दुर्लभ वस्तु तथा निष्काम भक्त परम दुर्लभ मोक्षको प्राप्त करते हैं। माँ दुर्गाजीकी 100 से अधिक मनोहारी रंगीन चित्रोंके साथ चार रंगोंमें आर्टपेपरपर प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹450, डाकखर्च ₹90

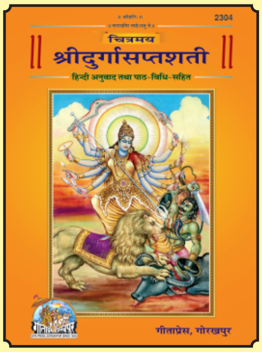

श्रीमद्भगवद्गीता, सटीक (कोड 2267) ग्रन्थाकार [चार रंगोंमें]—प्रस्तुत ग्रन्थमें श्रीगीताके मूल श्लोकोंके साथ सरल भाषामें उसका अर्थ और अन्तमें आरती दी गयी है। साथ ही प्रसङ्गानुकूल यथास्थान 129 बहुत ही मनोरम चित्रोंको भी दिया गया है। मूल्य ₹300, **(कोड 2269)** गुजराती मू० ₹300, **(कोड 2271)** मराठी मू० ₹280, **(कोड 2307)** बँगला मूल्य रु० 300, **(कोड 2315)** तेलुगु मूल्य रु० 280, **(कोड 2283)** अंग्रेजी मू० ₹280 **(प्रत्येकका डाकखर्च ₹70)**

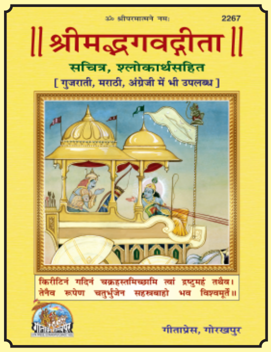

संक्षिप्त चित्रमय शिवपुराण (कोड 2318) [ग्रंथाकार, बड़े अक्षरोंमें, चार रंगोंमें, आर्ट पेपरपर] —215 से अधिक लीलाके रंगीन चित्रोंके साथ पहली बार प्रकाशित किया गया है। इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म शिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। इसमें इन्हें पंचदेवोंमें प्रधान अनादि सिद्ध परमेश्वरके रूपमें स्वीकार किया गया है। शिव-महिमा, लीला-कथाओंके अतिरिक्त इसमें पूजा-पद्धति, अनेक ज्ञानप्रद आख्यान और शिक्षाप्रद कथाओंका सुन्दर संयोजन है। मूल्य ₹1500, **डाकखर्च फ्री।**

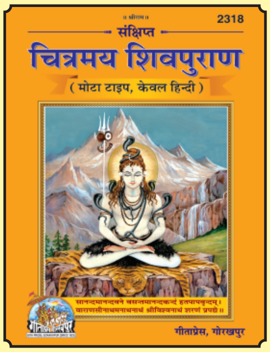

प्र० ति० 20-08-2023
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2023-2025
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2023-2025

कल्याणके सभी अंक निश्चित प्राप्त करनेके लिये

वार्षिक शुल्क ₹ 300+₹ 200 अतिरिक्त [मासिक अंक रजिस्ट्रीसे भेजनेके लिये]

इस सुविधाका लाभ उठावें एवं कल्याणके सभी अंक निश्चित प्राप्त करें।

गीता-दैनन्दिनी—गीता-प्रचारका एक साधन

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।)
व्यापारिक संस्थान दीपावली/नववर्षमें इसे उपहारस्वरूप वितरित कर गीता-प्रसारमें सहयोग दे सकते हैं।

गीता-दैनन्दिनी (सन् 2024)-की सितम्बर/अक्टूबर माहमें उपलब्धि सम्भावित।

पूर्वकी भाँति सभी संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहूर्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि।

पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 2278)—संस्कृत मूल हिन्दी अनुवाद, **बँगला** अनुवाद, (**कोड 2280**), **ओड़िआ** अनुवाद, (**कोड 2281**), **तेलुगु** अनुवाद, (**कोड 2282**); प्रत्येकका मूल्य ₹ 125

पॉकेट साइज— **सजिल्द (कोड 2279)**— गीताके मूल श्लोक मूल्य ₹ 50

'कल्याण' के पुनर्मुद्रित उपलब्ध विशेषाङ्क

कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹	कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹	कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹
41	शक्ति-अङ्क	300	667	संतवाणी-अङ्क	300	791	सूर्याङ्क	200
616	योगाङ्क (परिशिष्टसहित)	370	587	सत्कथा-अङ्क	280	1044	वेद-कथाङ्क-परिशिष्टसहित	250
636	तीर्थाङ्क	300	653	गोसेवा-अङ्क	180			
604	साधनाङ्क	360	1135	भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क	240	1132	धर्मशास्त्राङ्क	200
1773	गो-अङ्क	280				1592	आरोग्य-अङ्क	300
43	नारी-अङ्क	350	572	परलोक-पुनर्जन्माङ्क	270	2066	श्रीभक्तमाल-अङ्क	300
659	उपनिषद्-अङ्क	300	657	श्रीगणेश-अङ्क	250	1980	ज्योतिषतत्त्वाङ्क	200
40	भक्त-चरिताङ्क	340	42	हनुमान-अङ्क (परिशिष्टसहित)	230	2259	बोधकथा-अङ्क	140

e-mail : booksales@gitapress.org—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
Gita Press web : gitapress.org—सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
गीताप्रेसकी पुस्तकें Online कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये—
www.gitapress.org; gitapressbookshop.in

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)